पंचम अध्याय || पृष्ठ 122-153

"भूले बिसरे चित्र' उपन्यास

का

देश-काल-वातावरण"

* * *

देशकाल अथवा वातावरण उपन्यास का चौथा तत्व माना गया है। पात्रों के चरित्रों को पूर्णता देने तथा स्वाभाविकता की रक्षा के लिए देशकाल अथवा वातावरण का निर्माण किया जाता है इस प्रकार "प्रत्येक उपन्यास का अपना एक वातावरण होता है, जिसमें उसके पात्र अपनी गतिविधियों द्वारा जीवंत प्रतीत होते हैं। वातावरण द्वारा उपन्यासकार कथा में रस, चरित्र-चित्रण में रोचकता तथा सौन्दर्य की मनोहारिणी सलिला प्रवाहित करता है।"[1] उपन्यास रचना के समय उपन्यासकार को घटना का स्थान, समय, तथा तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों का ज्ञान नितांत अपरिहार्य है। बिना इस ज्ञान के उपन्यास में स्वाभाविकता नहीं आ सकेगी। समस्याओं एवं प्रश्नों का चित्रण बहुत कुछ इसी पर ही निर्भर होता है। देशकाल की सृष्टि ऐतिहासिक उपन्यासों में विशेष महत्व की रहती है। डा. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल के मतानुसार "यद्यपि कथानक, चरित्र-चित्रण और कथोपकथन की भाँति परिप्रेक्ष्य उपन्यास का मुख्य तत्व नहीं है, तथापि पात्रों के चरित्र को यथार्थ और जीवंत रूप प्रदान करने के लिए इसका प्रयोग वांछनीय है। परिप्रेक्ष्य चित्रण के माध्यम से उपन्यासकार सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, स्थानगत सौंदर्य, प्राकृतिक दृश्यों आदि को रुपायित करते हुए देशकाल और वातावरण की जीवंत झाँकी प्रस्तुत करता है।"[2]

उपन्यास में देशकाल-वातावरण इस रुप में चित्रित होना चाहिए कि पाठक उन स्थितियों की अनुभूति कर सके जिसमें घटनाएँ घटित होती हैं तथा जिस वातावरण में पात्र कार्य करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि, लेखक जिस देशकाल - वातावरण का चित्रण करता है उसमें स्वाभाविकता, सजीवता, सम्बध्दता आदि का सन्निवेश होना अति आवश्यक है। यदि देशकाल या वातावरण से पात्र, प्रसंग या घटना का तादात्म्य न हो तो उपन्यास की सफलता संदिग्ध रहती है, और वह कृति लेखक के कल्पना की उपज मात्र बनकर रह जाती है। इसीलिए उपन्यासकार को चाहिए कि वह पात्र, घटना या प्रसंग के अनुरुप ही वातावरण की सृष्टि करे। यदि इसमें लेखक अपने व्यक्तित्व का पुट भर देता है, तो और भी मौलिकता तथा नवीनता का समावेश हो जाता है।

डा. प्रतापनारायण टंडन उपन्यास में देशकाल का महत्व स्थापित करते हुए लिखते हैं: "उपन्यास की विविध घटनाओं, उसके विविध पात्रों तथा उनके क्रिया-कलापों और विभिन्न परिस्थितियों में उनकी प्रतिक्रियाओं को एक पाठक तब सम्भावित या किसी सीमा तक यथार्थ समझता है जब वह देखे कि उसकी पृष्ठभूमि किस सीमा तक देशकाल का सही वातावरण और लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है। यह तथ्य उपन्यास के कथानक तथा पात्रों दोनों के लिए समान रुप से सीमाएँ

निर्धारित करता है, जिसका अतिक्रमण करने से कृति के अशक्त बन जाने का भय रहता है। यदि कोई उपन्यासकार देशकाल का बंधन नहीं मानेगा तो उसकी कृति में किसी भी युग की सामजिक परिस्थितियों का चित्रण सम्भव नहीं होगा।"[3] वर्माजी के 'पतन' को छोड़ सभी उपन्यासों में देशकाल का यथार्थ चित्रण हुआ है। वर्माजी जिस समाज से बँधे रहे, जिन परिस्थितियों में पलकर जीवन से जूझते रहे, उसी का अधिकांश मात्रा में चित्रण अपने साहित्य में किया है। अतः उनके उपन्यास उनके निजी व्यक्तित्व से प्रभावित होने के कारण यथार्थपरख हैं। वे मध्यवर्ग से जुडे रहने के कारण उनके उपन्यासों में मध्यवर्गीय-जीवन का ही अधिक मात्रा में चित्रण हुआ है।

वर्माजी 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' के पुजारी हैं, क्यों कि उन्होंने प्रामणिक रुप से खुद स्वीकार किया है कि, "मैं अपने अध्ययन के क्षेत्र को सीमित तो नहीं समझता, एकांगी अवश्य समझता हूँ। आचार्यों के ग्रंथ मैंनेनहीं पढे हैं, मैंने दूसरों के अनुभवों अथवा उनकी स्थापनाओं से बहुत कम सीखा है। मेरा समस्त अध्ययन उस जीवन का है, जो मैं जी रहा हूँ या मेरे इर्द-गिर्द अनगिनती लोग जी रहे हैं।"[4] देशकाल के अन्तर्गत किसी भी देश या समाज की सामजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, लोगों के आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, प्रकृति-चित्रण आदि समझी जाती हैं।

'भूले बिसरे चित्र' में चित्रित-समाज विभिन्नता एवं देशकाल की दृष्टि से अधिक विस्तृत है इसमें एक मध्यवर्गीय परिवार की चार पीढियों के सहारे तत्कालीन भारतीय-जीवन के अर्धशती का सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिदृश्य चित्रित हुआ है। उपन्यास में एक कायस्थ परिवार के चार पीढियों को राष्ट्रीय पीढियों के रुप में देखा गया है। इस प्रकार यह उपन्यास एक परिवार मात्र की कथा न होकर एक पूरे युग का कालांश (Periodical Novel) उपन्यास बन गया है। इसमें युगजीवन और परिस्थितियों का सजीव चित्रण हुआ है। उपन्यास का कालखंड सन् 1885 ई.से सन् 1930-31 ई.तक है। नेमिचन्द्र जैन ने इस कालखंड पर उचित मंतव्य किया है : "यह कालखंड हमारे देश के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण युग है। यह काल देश के नई करवट लेने का नये सपने देखने का और नये स्वरों में गुनगुना उठने का एक नई चेतना से अनुप्राणित और संचालित होने का युग है।"[5] डा.बैजनाथ प्रसाद शुक्ल के मतानुसार, "भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में श्रृंगार, हास्य, वात्सल्यपूर्ण वातावरण दृष्टिगत होता है।[6] किन्तु उनका यह मत विषय की गहराई को पकड़ नहीं पाता, इसलिए हमारे मतानुसार उपन्यास में व्यक्ति, परिवार और राष्ट्र से सम्बन्धित मानव-समाज के लगभग 50 वर्ष के परिवर्तनशील युग का सम्पूर्ण आयामों के साथ परिदृश्य दृष्टिगत होता है। अतः यहाँ 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में देशकाल -

वातावरण का अध्ययन करना समीचीन होगा।

(अ) राजनीतिक वातावरण :

आलोच्य उपन्यास पाँच खण्डों में विभाजित हैं सन् 1885 से सन् 1931 ई.तक के युगीन परिवेश को सम्पूर्ण आयामों के साथ उपस्थित करता है। इसके दूसरे खण्ड को छोड़कर बाकी सभी में राजनीतिक वातावरण का निरुपण हुआ है। डा.अमरसिंह लोघा तत्कालीन राजनीतिक वातावरण की हलिक झाँकी देते हुए लिखते हैं, "लगभग पचास वर्ष में सामंती - शासन की समाप्ति के बाद अंग्रेजी - शासन अपनी नाग-फाँस को अदालती कारोबार, महाजन-बनियों के जनशोषण को कानूनन संरक्षण एवं नौकरशाही की सुसंकलित व्यवस्था से दृढ बना रहा था। गाँवों में सरकारी-तंत्र की धाक जनता व जमींदारों पर भी थी। शासकीय महत्ता व सरकारी अफसरों के सर्वत्र बहुमान से पढ़े-लिखे लोगों की एकमात्र महेच्छा सरकारी नौकरी की प्राप्ति थी।" [7] उपन्यास के प्रथम खण्ड में दिल्ली दरबार से पूर्व की स्थिति है जिसमें अंग्रेजी-शासन के अदालती कारोबार का चित्रण है जिसके हाते में मुंशी शिवलाल जैसे भारतीय मामूली अर्जीनवीसी करते थे। सामन्ती-शासन के समाप्ति के बाद तीसरे खण्ड में दिल्ली दरबार का चित्रण है। इंग्लैण्ड के बादशाह पंचम जार्ज के सन् 1911 ई.में हुए दिल्ली दरबार तथा स्वागत में खडे किये गये नगर जिसके पीछे लाखों रुपये खर्च किये गये थे ; उसका जीवंत चित्र लेखक ने अंकित किया है। जैसे- "युक्तप्रान्त के लिए निर्दिष्ट क्षेत्र में अतिथियों और प्रबन्धकर्ताओं के खेमे लग रहे थे। जगह-जगह घास के मैदान तैयार हो रहे थे और जाड़े के फूलों के बीज क्यारियों में डाल दिये गए थे। देशभर से फूलों के पौधे मँगवाकर लगा दिए गए थे। दरबार-नगर की समस्त सजावट का प्रबन्ध युक्त प्रान्त के लैफिटनेण्ट गवर्नर मिस्टर हीवेट के हाथ में था।

समस्त भारतवर्ष के देशी नरेशों के खेमों के लिए स्थान निर्धारित कर दिये गए थे और उनके खेमें तेजी के साथ लगाए जा रहे थे। देश भर की सामग्री उमड़ी पड़ रही थी वहाँ - हीरे, जवाहरात, सोना, चाँदी से लेकर आटा, दाल, साग, सब्जी तक। और इस सबका प्रदर्शन देखने के लिए दिल्ली की जनता की भीड़ उमड़ पड़ती थी।" [8]

हिन्दुस्तान के विशाल अनपढ़ प्रजा में बादशाह के प्रति सामन्तयुगीन-सी श्रध्दा थी। दिल्ली में दरबार भरने का एक मनोविज्ञानिक कारण अपनी सत्ता और वैभव की धाक सारे देश में जमाना था। प्रत्येक घमंडी अंग्रेज स्वयं को बादशाह का प्रतिनिधि मानता था और उसकी दृष्टि में सामान्य भारतीय से लेकर निजाम हेदराबाद तक सब गुलाम थे। भारतीय सामन्त भी उसका आधिपत्य

स्वीकार करके उसके सामने अपना सर झुकाते थे ; उसे नजरें देते थे । गंगाप्रसाद और रिपुदमनसिंह के बीच हुई बातचीत में इन बातों का व्यंग्यात्मक संकेत मिलता है । उन दिनों रेल-गाड़ी के पीछे एक थर्ड क्लास कम्पार्टमेंट होता था और अंग्रेजों की डायनिंग कार में कोई हिन्दुस्तानी घुस तक नहीं सकता था । इतना-ही नहीं उनके सभा-सोसाइटियों और क्लबों में भारतियों का प्रवेश निषिध्द माना जाता था । इस प्रकार उस समय भारतियों का अस्तित्व अंग्रेजों की दृष्टि में जानवरों से बदतर था और भारतीय लोग भी यह मान बैठे थे कि सात समुन्दर पार कर आया ब्रिटेश-शासन अमर है । इसीलिए तो ज्वालाप्रसाद कहता है : "यह राजनीतिक हलचलें उठेंगी और खत्म हो जाएँगी, लेकिन यह ब्रिटेश-सरकार वैसी-की-वैसी कायम रहेगी ।"[9] किन्तु कुछ पढे-लिखे तथा विदेशों में घुमे हुए ज्ञानप्रकाश जैसों को अपनी दासता, गुलामी तथा हीन भावना खलती है । इसीलिए वह गंगाप्रसाद से कहता है, "बिलकुल यही बात तुमसे सुनने की आशा थी बरखुरदार । डिप्टी कलक्टर हो न । मौज करते हो, चैन की जिन्दगी है । लेकिन मुझसे पूछो, मैं जो यूरोप से लौट रहा हूँ । हम लोग असभ्य हैं, हम लोग अछूत हैं । तुमने यह सब अनुभव नहीं किया, क्यों कि तुम्हें हिन्दुस्तान से बाहर निकलकर यह सब अनुभव करने का मौका ही नहीं मिला । लाखों आदमियों का भाग्यविधाता बनाकर तुम्हें अधिकार-मद में धुत बना दिया गया है ।"[10]

उपन्यास में लेखक ने सन् 1857 के बगावत से लेकर नमक सत्याग्रह तक के ऐतिहासिक घटनाओं का जीवंत लेखा-जोखा उपस्थित किया है ; जिसके कारण उपन्यास में सप्राणता, रोचकता तथा मार्मिकता उत्पन्न हो गई है । सन् 1857 की क्रान्ति असफल हो गई थी, जिसका प्रमुख कारण इसमें आम जनता का सहयोग प्राप्त न होना तथा देशी नरेशों में एकत्रित शक्ति का अभाव था यद्यपि यह क्रान्ति देशी नरेशों तथा जमींदारों ने की थी । उपन्यास में प्रथम महायुध्द का भी संकेत मिलता है, जिसमें भारतीय सेना के बल पर अंग्रेजों में जर्मनी को पराजित किया था । एक प्रसंग पर ज्ञानप्रकाश ने गंगाप्रसाद को बताया था - "जर्मनी को कुचलकर रख दिया है इस साम्राज्य ने । लेकिन तुमने कभी यह भी सोचा है कि जर्मनी को हराया किसने है ? जानते हो कितने हिन्दुस्तानी इस महायुध्द में मरे हैं । अंग्रेजों की लड़ाई हिन्दुस्तानियों ने लड़ी है - गुरखा, सिख, पठान, बिलोची, राजपूत, गढ़वाली, तिलंगाने, मराठे-सारे हिन्दुस्तान से सैनिक गये थे । पचास लाख की फौज थी हिन्दुस्तानियों की ; तब कहीं जर्मनी हारा ।"[11] और इसके बावजूद भी ब्रिटेश-सरकार हिन्दुस्तान को स्वाधीनता देने के वचन का पालन करके सायमन-कमिशन द्वारा झूठा आश्वासन देने का प्रयत्न कर रहा था ।

जिन भारतीयों ने विदेश में जाकर जर्मनी को हराया था वही लोग जालियाँ बाग वाले अमानवीय गोलीकाण्ड में मेजर डायर के हाथों भेड़-बकरियों की तरह मारे गये थे। इस नृशंस हत्याकाण्ड के बाद भी थोड़ी-सी उत्तेजना के बावजूद देश का वातावरण शान्त था-देश में विद्रोह की भावना का एकदम अभाव था। आगे चलकर 'मुस्लिम-लीग' की स्थापना से हिन्दू-मुस्लिम समस्या भी देश की आजादी में रुकावट बन बैठी थी और अंग्रेजी-शिक्षा द्वारा पढ़े-लिखे नवयुवकों के मन में यह बात बिठा दी गई थी, कि संसार में सबसे अधिक न्यायप्रिय, दयावान और उदार अंग्रेज हैं। गांधीजी के भारत आगमन के पश्चात राष्ट्र ने किस प्रकार करवट बदली, देशवासियों में कैसे राष्ट्रीय चेतना जागी, कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशनों ने किस प्रकार देश में नए प्राण फूँके - इनका समस्त चित्रण तत्कालीन राजनीतिक वातावरण को सजीव कर देता है।

अमृतसर कांग्रेस के पश्चात कलकत्ता कांग्रेस ने पहली बार देश की चेतना को सक्रिय आन्दोलन के लिए तैयार किया। इस राजनीतिक वातावरण का लेखक ने सजीव चित्र अंकित किया है। गांधीजी के आवाहन पर लोगों ने वकालत, कौंसिल, खिताब, तथा विद्यार्थी-अध्यापकों द्वारा स्कूल-कालेज छोडे जाने लगे थे। विदेशी का बहिष्कार तथा स्वदेशी का स्वीकार किया जा रहा था। इस तरह असहयोग आन्दोलन का विश्वसनीय तथा जीवंत चित्र लेखक ने अंकित किया है, जैसे - "मूलगंज के चौराहे पर यह जलूस रुका। बीच चौराहे पर विदेशी कपड़ो का ढेर लगाया गया। कपड़ों के साथ लकड़ी का कुछ सामान लोग इधर-उधर से बटोर लाए थे ताकि आग अच्छी तरह जल सके। फिर लोगों ने जोश से भरे हुए व्याख्यान दिये। व्याख्यानों के बाद इस विदेशी कपड़ों के ढेर में आग लगा दी गई। आग लगते ही एक ऊँची - सी लपट निकली, क्यों कि कुछ कपड़ो को मिट्टी के तेल में डुबो दिया गया था। उस लपट के निकलते ही लोगों ने 'महात्मा गांधी की जय' और 'भारत माता की जय' के नारे लगाए।" [12] बजाजे के दुकानदार के निम्नांकित कथन में तत्कालीन असहयोग आन्दोलन का देशव्यापी वास्तविक प्रभाव स्पष्ट होता है -

"बाबू साहेब, स्वदेशी का नारा सुन रहे हैं आप। विलायती माल है तो मेरे पास ; ठंडी सड़क की अंग्रेजी दुकानों पर भी इतना अच्छा माल नहीं मिलेगा। लेकिन दिखाता इसलिए नहीं हूँ कि लोग - बाग विलायती कपड़ों की होली करने पर उतर आए हैं। भला इस बाजार में विलायती सर्ज को कौन पूछेगा।"[13]

उपन्यास में 1919 में 22 से 26 दिसम्बर तक हुए अमृतसर कांग्रेस, मुस्लिम-लीग की स्थापना, खिलाफत परिषद, शोक सभा, कलकत्ता कांग्रेस, असहयोग आन्दोलन, पंजाब का मार्शल लॉ,

अहमदाबाद कांग्रेस, सामूहिक सत्याग्रह, चौरी-चौरा की हिंसक घटना, सत्याग्रह आन्दोलन की समाप्ति, गांधीजी की गिरफतारी, अमन सभा, सर्वदल-सम्मेलन, लाहौर कांग्रेस, गांधीजी और लॉर्ड अरविन के बीच हुई समझौते की वार्ता, सत्याग्रह आन्दोलन का घोषणात-पत्र और नमक कानून भंग आदि तत्कालीन राजनीतिक वातावरण से सम्बध्द कतिपय दृश्य पूरी सम्भावनाओं के साथ विश्वसनीयता से चित्रित हुए हैं । बीसवीं सताब्दी के इस आरम्भिक काल में देश की जनता जागृत हो, ब्रिटेश-शासन के खिलाफ आवाजें उठा रही थी । अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थी । आन्दोलन हो रहे थे, जुलुस निकलते थे, हड़तालें होती थीं । सरकार ने गंगाप्रसाद जैसे कई भारतीय अधिकारियों को मोहरा बनाकर उनपर आन्दोलन को दबाने की जिम्मेदारी सौंप दी थी और ये अधिकारी भी अपने इच्छा के विपरीत इन आन्दोलनों को निर्दयतापूर्वक दबाने में सफल हो रहे थे ।

इस प्रकार असहयोग आन्दोलन भी असफल हो गया था क्यों कि ग्रमीण लोगों के लिए इसका न तो कोई अस्तित्व था और न ही उन्हें उससे कोई सरोकार । उनमें न कोई चेतना थी न कोई उमंग । कुछ हो रहा है, केवल इत्ता-भर वह जानती थीं, लेकिन क्या हो रहा है और क्यों हो रहा है, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था । दुनिया का यह बदलता हुआ रूप उन्हें अजीब सा लग रहा था । "दुनिया कहाँ पहुँच गई है, और उसके आगे कहाँ जाएगी ।"[14] यह उनके समझ में नहीं आ रहा था । इन अनपढ लोगों तक राष्ट्रीय चेतना को पहुँचाने का बीड़ा उठाया था - महात्मा गांधीजी ने जिनके साथ जवाहरलाल की ताकत थी ।

अंग्रेजों ने हिन्दू - मुस्लिम साम्प्रदायिक कट्टरता को जानकर, उनको एक - दूसरे से लड़वाकर कौमी दंगे करवाये थे और देश की एकता - अखंडता में सुरंग लगवाई थी । इस देश में हिन्दू - मुस्लिम समस्या सदियों से चली आ रही है, जो आज भी विद्यमान है । इस परम्परागत साम्प्रदायिक समस्या की ऐतिहासिक पुष्ठभूमि का गंगाप्रसाद द्वारा एक ही परिच्छेद में परिचय दे दिया है, जो तत्कालीन राजनीतिक वातावरण को उजागर कर देता है : "हमारे देश की एक बहुत बड़ी और जटिल समस्या हिन्दू - मुसलमान की समस्या है । इस समस्या को सुलझाने में हम करीब तीन सौ साल से उलझे रहे हैं । जब यह समस्या सुलझने पर आ रही थी उसी समय यहाँ अंग्रेज आ गए । हिन्दू कायर थे, पातनोन्मुख थे, उस समय थोडे - से मुसलमान हिन्दुस्तान में घुसे । धीरे - धीरे सारा हिन्दुस्तान मुसलमानों के अधीन हो गया । लेकिन इस पराजय से हिन्दू धर्म मरा नहीं, अन्दर - ही - अन्दर उसमें भी ऊपर उठने की भावना आई । सत्रहवीं शताब्दी के अन्त

में मराठों ने मुसलमानों को हटाने का बीड़ा उठाया । पंजाब में सिख आगे आए । अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक महान मुगल साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया । यह आंतरिक संघर्ष चल ही रहा था कि अंग्रेज यहाँ आ पहुंचे । आपसी युध्द में हिन्दुओं और मुसलमानों ने समान भाव से अंग्रेजों का स्वागत किया, और इस वैमनस्य के कारण धीरे-धीरे सारा देश अंग्रेजों की गुलामी में आ गया । उस समय अगर अंग्रेज न आए होते तो सौ वर्ष के अन्दर हिन्दू - मुस्लिम - समस्या का अन्त हो गया होता । लेकिन अंग्रेजों के आ जाने से समस्या वैसी - की - वैसी बनी रही ।"[15] जो आज भी यथावत बरकरार है - हिन्दुस्तान - पाकिस्तान के जरिये । फिर भी उस युग में फरहतुल्ला जैसे ईमानदार तथा सच्चे कांग्रेसी कार्यकर्ता भी थे जो अपने धर्म के आधीन रहकर भी देश की एकता - अखंडता और स्वराज्य के लिए एक साथ लड़ रहे थे । उनके दिलों में समाज - सुधार के साथ - साथ देश के प्रति मंगलमय भावना थी ।

असहयोग आन्दोलन कितना प्रभावशाली बन गया था । लोगों मे किस प्रकार उत्तेजना फैली थी, इसका यथार्थ चित्र वर्माजी ने प्रस्तुत किया है, जो तत्कालीन राजनैतिक वातावरण की सजीव झाँकी प्रस्तुत करने में समर्थ है । जैसे - "आन्दोलन चल रहा था । बड़ी तेजी के साथ - एक अजीब ढंग से । हड़तालें हो रही थीं, चरखा चलाया जा रहा था, खादी और स्वदेशी का प्रचार हो रहा था; विदेशी माल का बहिष्कार किया जा रहा था । जलूस निकलते थे और खुल्लम खुल्ला सरकार की निन्दा की जाती थी; अंग्रजों को गालियाँ दी जाती थीं । जौनपुर में इस आन्दोलन को दबाने की जिम्मेदारी कलक्टर ने गंगाप्रसाद को दे दी थी । और वह तत्परता के साथ निर्दयतापूर्वक अपनी जिम्मेदारी निबाह रहा था । जौनपुर की जेले भर गई थी; लोगों पर लम्बे - लम्बे जुरमाने किये गए थे । जौनपुर के अधिकांश कार्यकर्ता जेलों में पड़े थे ।"[16] पूरा अंग्रेजी शासन - काल में गंगाप्रसाद जैसे अधिकतर भारतीय ही थे जो अपने अधिकार के बल पर अपने ही देशवासियों पर निर्दयतापूर्वक अन्याय - अत्याचार किया करते थे ।

आन्दोलन चल ही रहा था कि कुछ उत्तेजित लोगों ने चौरी - चौरा में गांधीजी के अहिंसावादी तत्वों को मानो धक्का ही दे दिया । इस वारदात मे 21 पुलिस के सिपाही और एक सब - इंसपेक्टर जिन्दा जला दिये गए और पूरा थाना फूँक दिया गया । इसके फलस्वरूप गांधीजी ने आन्दोलन को तुरन्त स्थगित कर दिया । गांधीजी की गिरफतारी का वारण्ट निकला । इस सामूहिक सत्याग्रह आन्दोलन की समाप्ति के बाद आम जनता की अपने देश के प्रति भावना निष्क्रिय बन गई थी । उनके दिलों में गांधीजी के प्रति जो भावनात्मक प्रेम और विश्वास था

समाप्ति पाने आ गई थी और लोग धीरे - धीरे असहयोग के स्थान पर सहयोग देने लगे थे । इस आन्दोलन को दबाने में गंगाप्रसाद जैसे अधिकारियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी परन्तु अंग्रेज - सरकार उनकी तरक्की करने के स्थान पर उन्हे पुरस्कार स्वरूप उनका तबादिला करवा रही थी । एक स्थान पर गंगाप्रसाद अंग्रेजों के राजनीतिक कूटनीति पर व्यंग्य करते हुए कलक्टर के मुँह पर ताना मार देता है : "और अब आन्दोलन समाप्त हो गया । यही बात है न । इस आन्दोलन की समाप्ति पर हिन्दुस्तानी होने के नाते मुझे दूध की मक्खी की तरह निकालकर बाहर फेंका जा रहा है ।"[17]

अब तक के गांधीजी के स्वराज्य प्राप्त करने के हरतरह के प्रयत्न विफल हो गए थे किन्तु ब्रिटिश - शासन पर उसका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ रहा था । अब तक की उनकी माँग औपनिवेशिक स्वराज्य की थी । गांधीजी अब नये सिरे से विचार कर रहे थे - जब स्वराज्य लेना ही है तो यह औपनिवेशिक ही क्यों ? पूरी स्वतंत्रता के साथ क्यों न लिया जाए । इसलिए गांधीजी फिर एक बार समस्त हिन्दुस्तान और उसके अनगिनती जनता कि नई उमंग और नये उत्साह तथा नई चेतना के साथ उठ खड़े हुए । अपने स्वतंत्रता के अधिकार को प्राप्त करने के लिए लोग मरने - मिटने को भी तैयार थे । इसी बीच लॉर्ड अरविन और गांधीजी के बीच हुई समझौते की वार्ता विफल हो चुकी थी और गांधीजी ने 2 मार्च सन 1930 को लॉर्ड अरविन के नाम एक पत्र प्रकाशित किया - वह पत्र सत्याग्रह - आन्दोलन का घोषणा - पत्र था । ज्ञानप्रकाश जैसे सच्चे कांग्रेस कार्यकर्ता और नवल जैसे सच्चे राष्ट्रभक्त नवयुवक अपनी समस्त अभिलाषा और ऐशोआराम तथा अपने परिवार की मोह-माया को तिलांजली देकर असमें सक्रिय भाग लेने के लिए उमड़ रहे थे इस आन्दोलन के वातावरण का एक विश्वसनीय तथा जीवंत चित्र अवलोकनीय है --

"पाँच अप्रैल की सुबह दांडी में महात्मा गांधी नमक कानून तोड़ रहे थे उसी दिन देश-भर में स्थान पर नमक कानून तोड़ा जाना था । यह निश्चित हुआ था कि नौ - बजे एक जुलूस कांग्रेज - ऑफिस से निकलेगा और वह हर सत्याग्रही के घर जाकर उसका स्वागत करेगा । इसके बाद यह जुलूस सारे शहर का चक्कर लगाएगा; और उसके बाद ये सत्याग्रही नमक - कानून तोड़ेंगे ।"

"नवल के बँगले पर प्रायः साढे दस बजे यह जुलूस पहूँचा । उस समय तक जुलूस में प्रायः बीस हजार आदमियों की भीड़ हो गई थी । नवल के बँगले के बाहर सड़क पर व जुलूस रूका । तरह - तरह के नारे लग रहे थे ।"[18] इस प्रकार उपन्यास में राजनीतिक वातावरण

का समापन नवलकिशोर द्वारा नमक सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने और जेल जाने की तैयारी करने से होता है ।

राजनीतिक वातावरण की यथार्थता, सजीवता तथा विश्वनीयता की सफल अभिव्यंजना से प्रस्तुत उपन्यास में शिल्प की दृष्टि से मानो चार चाँद लग गए हैं । डा. शांतिस्वरूप गुप्त के शब्दों में, "यद्यपि मुख्यतः वह (भूले बिसरे चित्र में) एक परिवार की चार पीढियों की कहानी है, पर साथ ही उसके साथ तेजी से बदलते हुए भारत का चित्र भी अंकित किया गया है । इस प्रकार उपन्यास आधुनिक भारत वर्ष के इतिहास के एक लम्बे काल - खण्ड को - दिल्ली - दरबार से गांधी के असहयोग आन्दोलन एवं नमक - कानून भंग तक की घटनाओं को पाठक की स्मृति में सजीव कर देता है, अर्धशती की अंग्रेजी साम्राज्यवाद की जड़ उखाड़ने की कहानी कहता है । इस प्रकार अपने देश - काल सम्बन्धी विस्तृत आख्यान के कारण इसे 'बूंद और समुद्र' के बाद हिन्दी उपन्यास गगन का दूसरा उपग्रह कहा गया है ।"[19] संक्षेप में हम कह सकते है कि आलोच्य उपन्यास में तत्कालीन परिवर्तनशील राजनीतिक देशकाल - वचातावरण का यथार्थ, सजीव तथा विश्सनीय चित्र मार्मिकता और प्रभावत्माकता के साथ उपस्थित किया गया है, जिसके कारण अतीत के भूले बिसरे स्वदेशी आन्दोलनों के चित्र लगभग उपस्थित हो गये हैं । इस प्रकार देश - कामल की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास का रानीतिक परिवेश औपन्यसिक सोष्ठव की अभिवृध्दि करता है ।

(ब) <u>सामाजिक - वातावरण</u> :

'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में अर्धशती के भारतीय समाज- जीवन में हुए परिवर्तनशील तथ्यों को एक कायस्थ परिवार के माध्यम से युगचित्र के रूप में उपस्थित किया है । इसकी कथा उत्तर प्रदेश के अर्धग्रामीण - जीवन से सम्बन्धित होते हुए भी प्रधानतः और अन्ततः नागकि और राजनीतिक जीवन की कथा है । इसमें फतहपुर, राजपुर, शिवपुर, हमीरपुर, सोरोंव आदि गाँवों तथा ज्वालाप्रसाद और गंगाप्रसाद के तबादले की नौकरी द्वारा कानपुर, जौनपुर, मिर्जापुर, दिल्ली, कलकत्ता, बनारस अदि नगरों के जन-जीवन एवं आन्दोलनों का विश्वसनीय चित्रण हुआ है । मुंशी शिवलाल तथा ज्वालाप्रसाद द्वारा ग्रमीण - समाज और गंगाप्रसाद, ज्ञानप्रकाश, नवल, लक्ष्मीचंद्र अदि के द्वारा नागरिक - समाज का निरूपण किया गया है । अतः उपन्यास में देश-काल-वातावरण का विस्तार होना स्वाभाविक है ।

लेखक ने विभिन्न परिवारों के जीवन-प्रसंगों तथा घटनाओं द्वारा तत्कालीन सामाजिक -

जीवन का विशद चित्रण प्रस्तुत किया है । यह समाज रूढिगत मान्यताओं और अंधविश्वासों में बुरी तरह से घिरा हुआ था । यद्यपि अंग्रेजी शिक्षा-दिक्षा एवं शासन के फलस्वरूप इसमें तब्दीली आ रही थी । लोग पुरानी परम्परा को त्यागकर नई परम्पराओं एवं मान्यताओं को स्वीकार कर रहे थे । मुंशी शिवलाल का परिवार समय के साथ चार पीढियों में हुए परिवर्तनशील परिवेश को सजीव कर देता है । इस प्रकार उपन्यास में पुरानी पीढ़ी का नवीन पीढ़ी के साथ संघर्ष दिखाकर आज की स्थिति में उसका मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है । मुंशी शिवलाल घर के मुखिया हैं, जैसा कि आज भी अनेक परिवारों में यह स्थिति देखने को मिलती है । परिवार का जेष्ठ व्यक्ति पूरे परिवार का कर्ता - धर्ता या सम्मानित व्यक्ति रहता है या परिवार के सभी सदस्य उसके अधिन रहते हैं । तत्कालीन समाज में तो ये चित्र प्रायः सर्वत्र दिखाई देते थे । तत्कालीन संयुक्त परिवार को मद्‌दे नजर रखते हुए डा. कुसुम अंसल ने उचित मंतव्य किया है कि, "किसी भी पुराने परम्परागत संयुक्त परिवार में घर का मुखिया या श्रेष्ट पदाधिकारी उस घर का जेष्ठ पुरूष होता था । वह पिता, दादा, चाचा कोई भी हो सकता था । उसके पास अपनी सूझ - बूझ होती थी, तजुर्बे से अर्जित एक विशेष तर्किक बुध्दि होती थी । जिसके बल पर वह परिवार में अपने उस विशेष स्थान पर स्थापित रहता था । घर के सभी सदस्य उसकी आज्ञा का पालन करते थे । इस प्रकार परिवार संयुक्त रहते थे ।"[20] मुंशी शिवलाल का परिवार टूटती परम्पराओं के साथ आगे बढ़ता हुआ अन्ततः एकदम बदल जाता है । मुंशी शिवलाल के परिवार में राधेलाल की पत्नी का शासन था । संयुक्त परिवार प्रथा में विश्वास रखनेवाले मुंशी शिवलाल अन्त तक अपने परिवार को विघटित होने से बचाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु अन्त में वे हारकर आत्महत्या कर गुजरते हैं । नौकरी पेशे के कारण ज्वालाप्रसाद को अपने परिवार से अलग रहना पड़ता है ज्वालाप्रसाद भी अंशतः परंपरावादी एवं भाग्यवादी होने के कारण इसी भावना से दबे रहते हैं किन्तु बदलती परिस्थितियों में यह आदर्श निभाना उन्हें असंभव - सा हो जाता है और वह अपनी इच्छा के विरूध्द आपने चाचा के परिवार को फतहपुर वापस भेज देते हैं । इस प्रकार तत्कालीन परिवारों के टूटने के क्रम को लेखक ने ज्वालाप्रसाद के माध्यम से उद्‌घाटित कर दिया है ।

ज्वालाप्रसाद के मन में अपने परिवारवालों के प्रति पूर्ण आत्मीयता थी, किन्तु गंगाप्रसाद के पीढ़ी में इस आस्था और आत्मीयता का तो प्रायः अभाव ही था । वह अपने पास आये रामलाल के लड़के बन्सीधर को पहचानने से भी इनकार कर देता है - "कौन रामलाल और कौन बंसीधर ? इन लोगों को तो मैं नहीं जानता ।"[21] इसे पाश्चात्य सभ्यता की देन ही कहना अधिक उचित होगा । उस समय का मध्यवर्ग अपनी समस्त अमानवीय बुराइयों से भी जकड़ा हुआ था । इसी कारण यह

यह वर्ग ऱ्हासोन्मुख भी होता जा रहा था । गंगाप्रसाद उसी का प्रतिनिधि पात्र है । इस मध्यम वर्ग के उत्थान के साथ - साथ सम्मिलित परिवार तो टूटते ही गये साथ - ही - साथ परिवार में सत्ता उस व्यक्ति के हाथ में आ गई जो कमाता था ।

मुंन्शी शिवलाल के परिवार में राधेलाल की पत्नी का अधिकार था, किन्तु जब से ज्वालाप्रसाद कमाने लगता है, तो यह अधिकार धीरे - धीरे उसकी पत्नी के हाथ आने लगता है । एक स्थान पर घर की नौकरानी छिनकी इस बात का तथ्योद्घाटन करती है, कि, "घर की मालकिन ज्वाला की बहू आय । ई जो सब राज - पाट आय तौन ज्वाला की बदौलत सब लोग भोग रहे ऑय ।"[22] इसके साथ ही परिवारों मे होने वाले लड़ाई - झगडे, आपसी ईर्षा-देष, स्वार्थपरख भावना आदि का उपन्यास मे यथातथ्य चित्रण हुआ है । ज्वालाप्रसाद के साथ यमुना को भेजना, राधेलाल की पत्नी का घर में शासन, रामलाल की पत्नी की घर में नापसंती और उसकी मार-पीट, भंडार घर की चाभी के लिए छिनकी और राधेलाल की पत्नी में स्पर्धा, छिनकी का राधेलाल के परिवार को 'पुरजोधन का खानदान कहना', ज्वालाप्रसाद द्वारा मुंशी राधेलाल को अपने घर से चले जाने को कहना, मुंशी राधेलाल का ज्वालाप्रसाद को गालियाँ देना, आदि सम्मिलित परिवारों में होने वाले हास्य - विनोद पूर्ण लड़ाई - झगडों, संघर्षो, आपसी कलह का परिचय देते हैं ।

बदलती परिस्थितियों में सामाजिक यौन नैतिकता में भी गंगाप्रसाद तक आते-आते काफी अन्तर आ गया था । लेखक ने इसका सजीव चित्रण किया है । प्रभुदयाल के मृत्यु के पश्चात उसकी पत्नी जैदेई की प्रेरणा से ज्वालाप्रसाद का उसके साथ अवैध-यौन सम्बन्ध स्थापित हो गया था यह सम्बन्ध शिवलाल - छिनकी जैसा प्रतीत होते हुए भी उसमें सामजिक स्तर का अन्तर था । ज्वालाप्रसाद की पत्नी यमुना जैदेई के सम्बन्ध में सब - कुछ जानकर भी मौन रहती है । जैदेई उससे अपने पति को छीन रही है यह, जानकर भी वह ज्वालाप्रसाद से कहती है, "मुझे शक-वक कुछ नहीं है । तुमने मुझे कभी शक में घुलते देखा है ? मैंने कभी तुम्हें शिवपुरा जाने से मना किया है ? मेरे घर में बार-बार नम्बरदारिन के आने पर मैंने कभी बुरा माना है ? मर्द का तो स्वभाव ही होता है बहकना । वह आगे यहाँ तक कहती है कि, "औरत सदा सहारा ढूँढ़ती है । लम्बरदार के चले जाने के बाद लम्बरदारिन ने तुम्हारा सहारा चाहा । क्योंकि तुम सहारा देने को तैयार थे, तो उसे तुम्हारा सहारा मिल भी गया । लेकिन तुम कहीं भाग न खड़े हो, उसे सहारा देना बन्द न कर दो, इसलिए लम्बरदारिन ने तुम्हारे सहारे का मोल चुकाया है धन से, मन से और तन से ।"[23] किन्तु जिस परिवेश में इस वातावरण की सृष्टि की गई है उससे यह प्रसंग

मेल नहीं खाता । अपने पति के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखने वाली स्त्री के साथ सामान्यतः ईर्ष्या - द्वेष की भावना होती है । वर्माजी ने जैदेई का आदर्श भारतीय नारी के रूप में जो चित्रण प्रस्तुत किया है वह अतिरंजनापूर्ण है । जैदेई का अपने पति के साथ अवैध यौन सम्बन्ध है यह जानकर भी मौन रहना प्रायः अस्वाभाविक प्रतीत होता है ।

पारिवारिक उत्तराधिकार में प्राप्त इस पर स्त्री-गमन और अनैतिक - यौन सम्बन्धों का मुंशी शिवलाल और ज्वालाप्रसाद ने आजीवन निर्वाह किया था, पर मुक्त विहारी गंगाप्रसाद में वैसी स्थिरता नहीं थी । गंगाप्रसाद ने दिल्ली के जौहरी राधाकिशन की पत्नी संतो और मलका नामक वेश्या से भी घनिष्ठ -यौन सम्ब न्ध स्थापित किया था । तत्कालीन उच्च अफसरों में पर स्त्रियों के साथ अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने की भावना बलवती हो रही थी । किन्तु ये लोग उन स्त्रियों के प्रति पूर्ण आस्था रखते हुए भी अपने भोग और विलासिता तक ही उन्हें अपने जीवन में स्थान देते थे । गंगाप्रसाद ने यही किया था । वह वेश्या मलका से यौन सम्बन्ध तो रखना चाहता था, किन्तु उसके साथ विवाह कर, वैवाहिक - जीवन आरम्भ करने को वह तैयार नहीं होता । वेश्यागमन के साथ - साथ अपनी फिजूलखर्ची, क्लबजीवन, मदिरापान आदि अनगिनत बुराईयों के कारण गंगाप्रसाद अन्त में टूट जाता है किन्तु उसका पुत्र नवलकिशोर गांधीवादी विचारधारा का नवयुवक था । अपने निःष्कलंक चरित्र द्वारा गांधीजी के विचारों से प्रेरित हो इस परंपरागत पारिवारिक दूषण का अस्वीकार करके वह नमक कानून तोड़कर जेल जाना अधिक उचित समझता है ।

इस युग के समाज में मध्यवर्गीय पढ़े - लिखे नवयुवकों की एकमात्र महेच्छा सरकारी नौकरी की प्राप्ति थी । इसके लिए वे उच्च अंग्रेज अफसरों के जूते सहलाते थे और उनकी खुशामद किया करते थे । नौकरशाही पेशे के सच्चे समर्थक मुंशी शिवलाल ने गोरे हाकिमों की चाटुकारिता, खुशामदखोरी और अपनी व्यवहारकुशलता के बल पर पुत्र ज्वालाप्रसाद को नायब तहसीलदारी पर नामजद करवाया था । अलोच्य उपन्यास में तत्कालीन अदालती कारोबार में झूठे इस्तगासे पेश करना, रिश्वतखोरी, जालसाजी आदि सरकारी कार्यालयों की गतिविधि का भी सजीव तथा याथार्थ चित्र प्रस्तुत हुआ है ।

उपन्यास में ग्राम्य वातावरण के सर्वाधिक ज्वलंत रूप का निर्देशन वहाँ के सामन्तों के बनियों द्वारा कर्ज में बिंधे होने और उनकी आर्थिक दशा के निरन्तर बिगड़ते जाने के चित्रांकन में हुआ है । इस युग में सामन्तवाद के शव पर पूँजीवाद पनप रहा था । झूठी मान-मर्यादा के लिए

ये लोग किस प्रकार जीवन-भर के लिए ही नहीं बल्कि पुश्त-दर-पुश्त कर्ज में बँधे जाते थे इसका उदाहरण हमें ठाकुर गजराजसिंह तथा बरजोरसिंह के प्रसंगों में मिलता है। इनके साथ-साथ जमींदार रायसाहब, ठाकुर, वीरभानसिंह, लाल रिपुदमनसिंह, विजयपुर के राजा धरनीधरसिंह, विजयपुर की रानी साहिबा, रानी साहिबा घाटमपुर, राजा साहेब घाटमपुर आदि तथाकथित सामन्त वर्गीय पात्र अपनी फिजूलखर्ची, बेटा-बेटियों के ब्याह में हजारों का खर्च और दहेज में लाखों की बातें, अन्दरुनी ईर्ष्या-द्वेष, एक-दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृति, मार-पीट, खून-खराब, अदालती खर्च, पुलिस और विभिन्न अधिकारियों की रिश्वत, घोर विला-सिता आदि के कारण घोर अधःपतन में सड़ रहे थे। जिन्हें दो वक्त की रोटी भी मयस्सर नहीं होती थी वही लोग अपनी झूठी शान के प्रदर्शन हेतु द्वार पर हाथी बाँधते थे; कमर में तलवार लटकाए घूमते थे। अपने बेटियों के विवाह में और लड़कों के मुँडन विधि में हजारों रुपये कर्ज लेकर अनाप-शनाप खर्च किया करते थे। शानदार पार्टियों का आयोजन, शराब के दौर, वेश्याओं का नाच-गाना इनमें पानी की तरह पैसा बहाया जाता था। अपना सब कुछ दाँव पर लगने के बावजूद भी अपने आप को, "अरे राज-खानदान के हैं, कोई बनिया-बक्कार थोड़े ही हैं।"[24] यह कहकर निम्न जातीय लोगों की उपासना करते थे। जहाँ ये लोग कंगाल होकर अन्दरही-अन्दर सड़ने और -हासोन्मुख होने लगे थे, वहीं अपनी पुरानी मान्यताओं पर अड़े रहकर अपने-आप को राजवंशी कहलवाते थे। एक स्थान पर राजा नन्दभूषणसिंह अपनी सामन्तीय शान की झूठी आन में बरजोरसिंह से कहते हैं-"डटे रहना बरजोर हम तुम्हारे साथ हैं। राज-वंश अभी इतना निर्बल नहीं हुआ है कि कायर बनकर चुपचाप बैठ जाय। इस बनिये की इतनी मजाल कि वह हम लोगों का अपमान करे।"[25]

ठाकुर गजराजसिंह ने अपनी बेटी की शादी में प्रभुदयाल के पास अपने पाँच गाँव रेहन रखकर बीस हजार रुपये कर्ज लिया था। इस सामन्तीय थाट के विवाह-प्रसंग पर शानदार बरात का सजीव वातावरण लेखक ने उपस्थित किया है, जैसे- "गजराजसिंह के यहाँ उसी दिन सुबह बरात आई थी, और लोगों का कहना है कि इतनी धूम की बरात पहले कभी घाटमपुर में नहीं आई। उस बरात में करीब बारह सौ बराती आये थे। मेहमानों के अलावा बरात के साथ ग्यारह हाथी, इक्यावन ऊँट, एक सौ एक घोड़े और तीन सौ बहलियों में जुते हुए छः सौ बैल भी थे। मेहमानों और जानवरों की देखभाल करने के लिए प्रायः आठ सौ नौकर भी थे। इतनी बड़ी बरात को ठहराने का प्रबन्ध ठाकुर गजराजसिंह ने अपने पचास बीघे के आम के बाग में किया था। दूर-दूर से तम्बू और कनातें लाकर वहाँ लगवा दिये गए थे।"[26] बरजोरसिंह ने भी उसी प्रभुदयाल से अपने

बेटे के मुँडन संस्कार पर अपनी सौ बीघा की खुदकाश्त एक हजार रुपये में पाँच साल पहले रेहन रखी थी। पाँच सालों मे वह रकम सूद-दर-सूद के हिसाब से दो हजार के ऊपर पहुँच चुकी थी।

उपन्यास में बनियों के अभ्युदय के साथ-साथ उनके लड़कों द्वारा पूँजीवाद के विकास क्रम को भी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है। प्रभुदयाल का पुत्र लक्ष्मीचन्द्र गाँव तजकर धोखाधड़ी एवं जालसाजी से लाखों रुपये इकठ्ठा कर चुका था। वह देखते ही देखते एक बहुत बड़ा पूँजीपति बन बैठा था। उसने कानपुर में एक कपड़े की, एक चीनी की और दो तेल की मिलें खोली थीं तथा इलाहाबाद में एक लकड़ी का बहुत बड़ा कारखाना खोल दिया था। इस पूँजीवादी युग में अर्थ ही मजहब और ईमान बन गया था। ये पूँजीपति वर्ग अपने वैयक्तिक स्वार्थ के लिए जहाँ एक तरफ कांग्रेस को रुपये देते थे वहीं दूसरी तरफ सरकार को रुपये देते थे। ज्ञानप्रकाश के मुँह से इन पूँजीपतियों के स्वार्थी प्रवृति को उद्घाटित किया गया है- "यह पूँजीपति जबरदस्त मुनाफा उठाता है। उस मुनाफे का एक छोटा-सा हिस्सा सरकार को देता है, ताकि सरकार से उसे हर तरह की सुविधाएँ मिलें। इस मुनाफे का छोटा-सा हिस्सा वह देता है कांग्रेस को, ताकि स्वदेशी का आन्दोलन जोर पकड़े और उसका माल जोरों के साथ बिके। इस मुनोफ का छोटा-सा हिस्सा देता है गंगाप्रसाद ज्वाइंट मजिस्ट्रेट को ताकि लक्ष्मीचन्द्र जो लूट-खसोट, बेईमानी करता है, उसके बारें में सरकारी कर्मचारी आँखें बन्द कर लें। रुपया इस युग की सबसे बड़ी मजबूरी है।"[27] इन रुपये-पैसों के लिए यह पूँजीपति वर्ग अपने माता-पिता को भी गाली देने से नहीं चूकता। इस जाति की उन्नति में उनकी व्यक्तिगत अप्रामाणिकता, अमानवीय क्रूरता, सरकारी शासन का पूर्ण सहयोग और इसके लिए उनके नारी-समाज की चरित्र भ्रष्टता मुख्यतः उत्तरदायी थी।

उच्च-वर्गीय तथा सामन्ती-समाज में तत्कालीन परिवर्तित परिस्थितियों में पूँजीवादी प्रभाव से पाप-पुण्य तथा नीति-अनीति की मान्यताओं में आमूल परिवर्तन हो गया था। इस वर्ग में अनैतिक-यौन सम्बन्ध अप्रत्याशित आर्थिक लाभ का कारण बन गया था। दिल्ली के जौहरी राधाकिशन ने अपनी पत्नी संतो के द्वारा यही किया था। संतो ने गंगाप्रसाद को अपनी नाग-फाँस में फँसाकर सतीत्व की सारी मर्यादा अपनी जेठानी कैलासो की तरह उतार फेंकी थी। नैतिकता प्रेमी लाल रिपुदमनसिंह ने गंगाप्रसाद के गिलास की जूठी शराब पति के सामने पीते हुए संतो को देखा था। उसने गंगाप्रसाद से ही अपनी पत्नी तथा उसके प्रेमी शिवप्रताप की हत्या की कहानी सुनकर कहा था- "आज की परिस्थितियाँ दूसरी हैं, आज की मान्यताऐं बदल गई हैं। जिस जगह तुम हो, वहाँ हर चीज बिकती हे - दीन, ईमान ~~है-सब-कुछ-बिकता-है-।-यहाँ-न-हत्या-होती-है-~~ न सत्य, चरित्र। यह पूँजीवाद का युग हे, यह बनियों की दुनिया है, सब-कुछ बिकता है। यहाँ न

हत्या होती है, न बदला लिया जाता है । तुम और सतवन्ती ऐश करोगे, और यह राधाकिशन, सब-कुछ देखकर भी आँख बन्द कर लेगा । यही नहीं, बहुत सम्भव है यह राधाकिशन तुम्हारे जरिये कुछ फायदा उठाने की भी कोशिश करे ।"[28] इस परिवार में जन्म लेकर लाल रिपुदमनसिंह अपने आप को अपराधी महसूस कर रहा था । अपनी विवशता प्रकट करते हुए उसने गंगाप्रसाद से कहा था- "बाबू गंगाप्रसाद, यह ऐश्वर्य और भोग-विलास का जीवन, जहाँ कोई चिन्ता नहीं, कोई क्रम नहीं, कोई जिम्मेदारी नहीं.......इस जीवन में मनुष्य बड़ी जल्दी बहकता है । जहाँ धन है वहाँ धन ही देवता बन जाया करता है, क्यों कि धन में शक्ति केन्द्रित हो चुकी है । यह मेरा दुर्भाग्य है बाबू गंगाप्रसाद, कि मैं ऐसे कुल में पैदा हुआ जहाँ चिन्ताओं के अभाव में विकृतियों का साम्राज्य है ।"[29]

सामाजिक-वातावरण में उन वर्गों का भी भलि-भाँति चित्रण हुआ है जो निम्न वर्गीय तथा निम्न जातीय जन-जीवन से सम्बन्धित हैं । तत्कालीन युग में निम्न-वर्गीय लोगों को भोग एवं सेवा-टहल की वस्तु मात्र माना जाता था । ये निम्न स्तर के स्त्री-पुरुष अपने अन्नदाता की पीढ़ी-दर-पीढ़ी निस्वार्थ सेवा करते थे ; उनके सुख-दुःख में साझेदार होते थे । यह बात और है कि, आज के समाज में ऐसे नौकर अत्यंत-ही दुर्लभ हो गये हैं । घसीटे का परिवार ऐसा ही परिवार था, जो अपने अन्तिम पीढ़ी तक मुंशी शिवलाल के खानदान की सेवाटहल करता रहता है । इस सामन्तीय समाज में अपने घर में नौकर रखना और उनके पत्नियों के साथ अनैतिक यौन सम्बन्ध स्थापित करना एक परंपरा ही बन गई थी । घसीटे की दूसरी पत्नी छिनकी के साथ विद्युर शिवलाल का अवैध-यौन सम्बन्ध था, यह परिवार के सभी सदस्य घसीटे और उसका पुत्र भीखू तक सब कुछ जानकर-भी अज्ञात से बने रहते थे । इतना होते हुए भी मुंशी शिवलाल उसे अपनी पत्नी से कम नहीं समझते थे । एक तरह से वह उनकी अर्द्धांगिनी-ही थी । इसीलिए तो मृत्यु समय उसकी जिम्मेदारी ज्वालाप्रसाद पर सौंपते हुए उन्होंने कहा था, "यह छिन्नकी, यह तेरी दूसरी माँ है । मैंने इसे बड़ा कष्ट दिया है ; इसकी कोई बात नहीं सुनी मैंने । तो इसे अब तेरी दया पर छोड़ रहा हूँ । तेरी सबसे अधिक सगी यही है ।[30]

ये नौकर बेहद ईमानदार और निःस्वार्थी थे । अपने अन्नदाता के औलाद के प्रति उनके मन में ममता और वात्सल्यमय भावना थी । वे उन्हें अपनी ही औलाद मानते थे ; उनके शादी-ब्याह में अपने जीवन-भर की पूँजी निछावर कर देते थे । छिन्नकी और घसीटे ऐसे ही निष्ठावान पात्र हैं जिन्होंने प्रायः ज्वालाप्रसाद और गंगाप्रसाद को पुत्र-सा मानकर जीवन-पर्यंत उनकी सेवा की थी और हमेशा उनके हितचिंतक रहे थे ।

सामाजिक वातावरण में समाज के उस घिनौने रूप का भी लेखक ने प्रसंगवश उल्लेख कर दिया है, जहाँ पहाड़ो पर बसने वाले नायक - जाति के लोग परंपरागत अमानवीय तथा स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण अपनी बेटियों को मुसलमानों तक के हाथों सौपकर उनके शरीर की बहुत बड़ी रकम वसूल करते थे । मीर साहेब को बेची गई पहाड़ी लड़की रूक्मा इसका अच्छा उदाहरण है । इसके साथ-साथ तत्कालीन - समाज अनगिनत विकृतियों से भरा पड़ा था । समाज में नारी की दयनीय दशा, छिनकी - घसीटे द्वारा वृध्द विवाह, ज्वालाप्रसाद द्वारा बाल-विवाह, रूक्मा के ऊपरी प्रसंग द्वारा पहाड़ों मे लड़कियों का क्रयविक्रय, जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन, विद्या के विवाह प्रसंग द्वारा दहेज-प्रथा, अनमेल-विवाह आदि समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । आगे चलकर विद्या के प्रगतिशील विचारों, विद्रोही स्वभाव तथा उसे पति पर हाथ उठाते दिखाकर लेखक ने उस प्रगतिशील आधुनिक नारी का चित्र उरेहा है जो अब बन्धनों को तोड़ने के लिए छटपटा रही थी और विवाह के देवी बन्धन न मानकर पति और ससुराल को त्याग अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती थी । इसके साथ-साथ सामाजिक छल-कपट, मृत्यु के पश्चात ब्राह्मण भोज, गोदान कराना, निम्न जाति के स्त्री-पुरुषों को चौके में प्रवेश की मनाई, अछूतों के लिए गृह प्रवेश की मनाई, विदेश-गमन के पश्चात स्वदेश लौटने पर प्रायःश्चित करना, सत्यनारायण की पूजा करना, कल्पवास करना, बहू के बच्चा जनने के समय लेड़ी डाक्टर को न बुलाकर किसी दाई को ही बुलाना, तिलक-भेजना, विदेशी दवा का सेवन न करना आदि कतिपय धर्मभीरु सामाजिक लोगों में यह रुढिगत मान्यताएँ बुरी तरह से विद्यमान थीं ।

तत्कालीन सामजिक-वातावरण में छुआछूत की भावना एक भयानक सक्रामक-बीमारी की तरह समाज को कुरुप एवं रुग्ण बना रही थी । चमारों को उच्च कुल वालों के कुँएं से पानी भरने नहीं दिया जाता था । इस प्रकार समाज वर्गों में ऊँच-नीच का भेदभाव करता था और मुंशी रामसहाय जैसे उदारमना व्यक्ति भी सामाजिक परम्परा को ठुकराने में असमर्थ थे क्यों कि अन्य व्यक्तियों के समाज उनकी भी धारणा थी कि, "हम सब समाज द्वारा शासित हैं, हम सब की रक्षा समाज करता है । इन सामाजिक नियमों को तोड़ा नहीं जाता, इन नियमों को केवल बदला जाता है, और उन्हें बदलने की क्षमता महान त्यागियों और तपस्वियों में ही मिलेगी । .....यदि सामजिक व्यवस्था के आगे हम सिर नहीं झुकाते तो हम अराजकता के पाप के भागी होते हैं, और सामाजिक प्राणी होने के कारण हम गृहस्थ लोग अराजक बन ही नहीं सकते ।"[31] निम्न-वर्ग के अछूत कहे जाने वाले लोग स्वयं छुआछूत को मानते थे और ऐसे काम करने में उन्हें ग्लानि होती थी कि जिससे बड़ी जात

वालों का धर्म या परलोक बिगड़े । इसलिए कहार जाति की छिनकी मुंशी शिवलाल के लिए कच्ची रसोई में जाकर खाना बनाने में संकोच करती हुई कहती है- "राम-राम । हम कच्ची रसोइयाँ माँ कैसे जाई ? चौका माँ हमरे जाँय से चौका छूत हुइ जइहै न । .....तुम्हारे हाथ धोंडत हन, ई पाप हमसे न कराओ - हम चौका माँ न घुसब । तुम्हार परलोक हमरे हाथ न बिगडे ।" [32]

यह छुआछूत की भावना देहातों में ही नहीं थी बल्कि नागरिक-जीवन के पढ़े-लिखे लोगों में भी बुरी तरह से घर किये हुए थी । इस लिए गंगाप्रसाद जैसा पढ़ा-लिखा आधुनिक व्यक्ति भी चमार गेंदालाल को अपने कमरे में देखकर भड़क उठता है और उसे कमरे से बाहर कर देता है । उपन्यास के ये दृश्य किसी एक देश या काल के न होकर सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक हैं । गेंदालाल अस्पृश्यों की जिस करुण स्थिति का चित्र प्रस्तुत करता है वह आज भी अनेक देहातों में विद्यमान हैं । एक स्थान पर अस्पृश्यों की विड़म्बनापूर्ण करुण स्थिति पर वह कहता है, "हमारे पढ़ने-लिखने से भी क्या होता है । मैं ही पढ़-लिख गया हूँ, लेकिन कहीं नौकरी नहीं मिलती । जब लोग मुझे छूने ही को तैयार नहीं हैं तब भला वे मुझे दफतर में अपने साथ बैठने क्यों देंगे ? वह तो कहिए मिशन-स्कूल था, इसलिए किसी की चली नहीं ; नहीं तो लोग मुझे पढ़ने भी न देते ।"[33]

शर्माजी ने 'सेवासदन' या 'सेवाश्रम' की स्थापना तो नहीं की है किन्तु इस उपन्यास में मलका द्वारा वेश्या-सुधार का आदर्श रखकर इस सामाजिक दूषित वातावरण से मुक्ति प्राप्त करने का निर्देशन अवश्य किया है । अपने नर्कतुल्य-जीवन से मुक्त हो सम्मानित नागरिक-जीवन जीने की महेच्छा वेश्या मलका में थी । 'एम.ए.' के छात्र सत्यव्रत शर्मा ने उसे अपनाते ही वह माया शर्मा बन जाती है और सम्मानित नागरिक-जीवन बिताने के साथ-साथ स्वतंत्रता आन्दोलन में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है । इस प्रकार मलका नारी जाग्रति की एक नई मिसाल है । नगरों के सामाजिक जीवन के चित्रों के अतिरिक्त लेखकने कहीं-कहीं ग्रामीण जीवन की सजीव झाँकी भी प्रस्तुत की है, जैसे- बुद्धूसिंह पहलवान के सोरोंव के अखाडे, बिशन गुरु के अखाडे, पहलवानों की कुश्ती, पुलिस द्वारा आयोजित दंगल, पहलवानों की लाग-डपट, गाँव के बाजार आदि के दृश्य तत्कालीन ग्रामीण-जीवन के एक पक्ष को प्रस्तुत करते है ।

देश-काल की दृष्टि से यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि उपन्यास में ग्रामिणों तथा नागरिकों की वेश-भूषा, उनके खान-पान, रहन-सहन, बात-चीत आदि की यथार्थ तथा स्वाभाविक झाँकियाँ प्रस्तुत की गई हैं । ग्रामीण जनता के खान-पान के संदर्भ में छिनकी और राधेलाल की पत्नी के कथन द्रष्टव्य हैं-

छिनकी : "हम खिचड़ी माँ आलू उबालै के बरे ड़ाल दीन्हन, कटोरी माँ घी, निमक, मिरच और नीबू, ई सब नौका के बाहर धरा है । तौन हम तो नहॉय के बरे जाय रही हन, तुम खिचड़ी उतार के खाय लीन्हेव । जो बची तौन ढाक दीन्हेव, हम आयके खाय लेव । और भुरता बनावब न भूलेव ।" [34]

राघेलाल की पत्नी : "दादाजी केर घरम लै लीन्हेव हो उन्हें दाल-भात खिलाय कें, अब हम लोगन केर बारी है । हमें ई मेंकारै अपने साथ लाए हैं, छिनकी रानी तो दादाजी को रोटी पाथ के खिलाय रही है ।" [35]

ग्रामीण तथा शहरी लोगों की वेश-भूषा के संदर्भ में कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं, जैसे -

(1) "बरजोरसिंह के सर पर पगड़ी थी, लेकिन वह उघारे बदन था । धोती में काछ लगी थी और धोती के फेंटे से उसकी पुश्तैनी तलवार बँधी थी ।" [36]

(2) लाल रिपुदमनसिंह की वेश-भूषा देखिए - "गठे बदन का और मझोले कद का आदमी, रंग साँवला, मूँछे महीन छँटी हुई, कानों से हीरे की तुरकियाँ पड़ी हुई, महीन रेशमी किनारों की धोती और रेशम का कुरता पहने हुए ।"[37]

(3) दिल्ली दरबार देखने जा रही संतो की रानी-महारानी जैसी वेश-भूषा द्रष्टव्य है : "जारीकी ब्रोकेड़ की लाल-काली साड़ी, सिर से पैर तक माणिक के गहने । कश्मीर का जरीतारवाला लाल दुशाला उसके कंधे पर पड़ा था । मोतियों से सजी हुई माँग । घर सेवह सफेद रेशमी चादर ओढकर निकली थी ।" [38]

(4) नवलकिशोर की उषा के जन्म-दिवस के अवसर पर की गई वेश-भूषा अवलोकनीय है -

"उसने पापलीन की कमीज निकाली और उसमें सोने के वे बटन लगाए, जो उसके पिता लगाया करते थे । सबसे नये फैशनवाली टाई उसने बाँधी और फिर चाइना सिल्क वाला अपना सबसे अच्छा सूट पहना ।"[39]

उपन्यास में कई जीवंत-चित्र अवलोकनीय हैं जो तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं और टूटने हुए जीवन-मूल्यों के परिवेश को यथातथ्य प्रस्तुत करने में समर्थ हैं ।

(1) बरजोरसिंह - "हाँ नायब साहेब । आज इस हाथी को भी अलग करने को तैयार हो गया था अपनी जमीन बचाने के लिए । लेकिन उनका कहना है कि हाथी बाँधना आसान है, खिलाना कठिन है । वह साला बनिया क्या हाथी पालेगा । तो लौट आए हम ।"[40]

"माफी माँगे हम ? उस बनिये से ? -- समय बदल गया है नायब साहेब, नहीं तो इस प्रभुदयाल को हम रातों - रात लुटवा लेते ।"[41]

(2) गजराजसिंह ज्वालाप्रसाद से कहते हैं, "नायब साहेब, बनिया राजा बनने चला है ।" इस पर ज्वालाप्रसाद उन्हें वर्तमान स्थिति से अवगत कराते हुए कहते हैं, "इसमें अचरज की बात क्या है ? सत्ता इस युग में भुज - बल में नहीं है, सत्ता अब रूपये में है । आखिर अंग्रेज लोग बनिये ही तो हैं । सात समुन्दर पार करके विलायत से यहाँ आए थे तिजारत करने, और आज सारे हिन्दुस्तान पर राज कर रहे हैं ।"42

(3) गजराजसिंह बोले - "राज - कुल वालों को किसानी करनी पड़े, यह सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात है । लेकिन किया क्या जाए, समय सब - कुछ करवा लेता है । विधाता का लिखा कहीं कोई काट सकता है । भूखों मरने से तो खेती - किसानी करना अच्छा है ।"[43]

(4) छिनकी - "इहै जो ज्वाला के चाचा का खानदार ज्वाला की कमाई पर मौज करैं का आय रहा है तौन दुरजोधन का खानदान इकठ्ठा हुई रहा है ।"[44]

(5) ज्वालाप्रसाद - "यह दिन भी देखना बदा था । घर की लड़की घर से निकलकर नौकरी करे, दूसरों की गुलाम बने ।"[45]

उपन्यास में मानव - समाज के रोजमर्रा के जीवन में घटित होने वाले अनेक घटनाओं, प्रसंगों का ब्योरा लेखक ने सजीव पृष्ठभूमि पर अंकित किया है । जैसे - जन्म, मृत्यु, प्रेम, बीमारी, सुख-दुःख, हर्ष-उल्हास, ईर्ष्या-द्वेष आदि । इन प्रसंगों, घटनाओं की सृष्टि मार्मिक वातावरण द्वारा की गई है । इस संदर्भ में गंगाप्रसाद के मृत्यु का करूण प्रसंग अवलोकनीय है - "घर भर में कुहराम मच गया । ज्वालाप्रसाद और नवल ने मिलकर गंगाप्रसाद को पलंग से उतारकर जमीन पर लिटाया । ब्राह्मण को बुलाकर गोदान कराया गया । बाहर पण्डित महामृत्युन्जय जाप के पाठ पर बैठ गया । उस घर में मृत्यु का आधिपत्य हो गया है, ऐसा नवल को लग रहा था । यमुना बेहोश पड़ी थी । कमरे के बाहर वाले बरामदे में; रूक्मिणी अपना सिर पटक रही थी । ज्वालाप्रसाद और नवल कमरे में इस प्रकार बैठे थे, मानो वे मृत्यु के प्रहार से गंगाप्रसाद को बचना चाहते हों । विद्या केवल और सुधा को लेकर बाहरवाले आँगन में चली गई थी, और भीखू दौड़-धूप कर रहा था ।

सुबह तीन बजे के करीब गंगाप्रसाद ने आँखे खोलीं । आँख खोलते ही उसकी नजर नवल पर पड़ी, "तुम -- तुम हो ।" फिर उसने अपने पिता को देखा, "बप्पा, नवल पर आप भरोसा

किजिए । यह विद्या का विवाह करेगा ।" और फिर उसने अपने चारों ओर देखा । इशारे से उसने यमुना को बुलाया, "अपना पैर मेरे हाथ को छुआ दो ।" फिर उसने रुक्मिणी को देखा, "बहुत तकलीफ दी है तुम्हे, क्षमा कर देना ।" तब उसने अपने बच्चों को देखा, लेकिन शायद उसके बोलने की शक्ति जाती रही थी । नवल की ओर देखकर उसने उन बच्चों की ओर संकेत किया, मानो वह कहना चाहता हो कि उन सबका भार वह नवल पर छोड़ रहा है । फिर एकाएक उसकी दृष्टि विद्या पर अटक गई जाकर । उसी समय उसे हिचकी आई और सिर लटक गया ।

घर भर में चीत्कार मच गया ।'[46]

इस प्रकार 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में सामाजिक वातावरण का चित्र बदलते - टूटते जीवन - मूल्यों एवं मान्यताओं के साथ सजीव तथा यथार्थ पृष्ठभूमि पर चित्रित किया गया है ।

(क) **धार्मिक - वातावरण :**

लेखक ने विभिन्न परिवारों, प्रसंगों तथा घटनाओं द्वारा तत्कालीन धार्मिक वातावरण का भी विशद परिचय दे दिया है । डा. शांतिस्वरूप गुप्त के मतानुसार आलोच्य "उपन्यास में धर्म के दो स्वरूप चित्रित किये गये हैं - साम्प्रदायिक एवं रूढिग्रस्त । बरजोरसिंह द्वारा प्रभुदयाल के अपमान का कारण वर्ण - व्यवस्था की श्रेष्ठता - हीनता का दंभ है । कुएं पर अछूतों के न चढ़नें देने और गेंदालाल के तिरस्कार किए जाने के पीछे भी यही व्यवस्थागत संस्कार है; हिन्दू-मुस्लिम दंगे भी इसी साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम हैं । दूसरी ओर, प्रभुदयाल की हवेली के फाटक पर राधा-कृष्ण का मन्दिर, वहाँ प्रतिदिन प्रातः - सन्ध्या के समय होने वाली आरती, रामायण - भागवत की कथा, प्रसाद चढ़ावा, वीरभानसिंह के वैभव के प्रदर्शन के लिए मन्दिर बनवाना, रामदहिन ओझा और बेचू मिसिर की लाग - डांट, दक्षिणा में चांदी का जूता, मृत्यु -भोज के अवसर पर सैंकडों ब्राहमणों को निमन्त्रण देना ताकि मृतात्मा को सन्तोष और सद्‌गति मिले, धुण्डी स्वामी का पाखंड आदि धर्म के रूढिग्रस्त स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं ।"[47]

तत्कालीन समाज में रूढिग्रस्त धर्म के कारण लोगों में कितना अंधविश्वास फैला हुआ था, इसका प्रमाण हमें उन लोगों के धार्मिक बाहयाडम्बर में मिलता है । वर्माजी ने ग्रामीण जीवन में होनेवाले धार्मिक बाहयाडम्बर को सही पहचाना है । लोगों में यह धारणा बस गई थी, कि किसी पहुँचे हुए साधु से कण्ठी लेने से पाप धुल जाता है और गंगाजल से सब कुछ शुध्द हो जाता है - यहाँ तक कि गंगाजल से शराब भी शुध्द हो जाती है ।

अंग्रेजी शासन काल में विलायत से लौटने पर प्रायःश्चित्त करना पड़ता था; अनुष्ठान करना पड़ता था । ऐसा न करने पर जात - बिरादरी के लोग उन्हें बिरादरी से खारिज कर देते थे । इसी कारण बाबू बटेश्वरी प्रसाद को बिरादरी से खारिज कर दिया गया था । ज्ञानप्रकाश ने भी इस आडम्बर से बचने के लिए अपने घर का हमेशा के लिए त्याग कर दिया था । भारतीय अनगिनत अनपढ प्रजा विदेशी दवा खाने से कतराती थी । उनके दिलों में यह धारणा बराबर घर किए हुए थी कि विदेशी दवा खाने से उनका धर्म भ्रष्ट हो जाता है । जैदेई का कथन इसी बात की ओर संकेत करता है, "देवरजी, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, यह विलायती दवा न पीने को कहो, धरम चला जाएगा ।"[48]

रूक्मा के बेचे जाने के प्रसंग द्वारा तत्कालीन धर्मभीरू स्त्रियों के रूढिगत मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है । डिप्टी कलक्टर मीर साहेब नायक जाति की रूक्मा को खरीदकर उसे जबरदस्ती मुसलमान बनाना चाहते है, परन्तु रूक्मा सब पाशवी अत्याचार सहकर भी धर्म-परिवर्तन के लिए तैयार नही होती इसलिए गंगाप्रसाद द्वारा उसे मुक्त करवाने के सभी प्रयत्न वह विफल कर बैठी थी, क्यों कि वह समझती थी कि जिसके हाथ वह बेच दी गई है, वही उसका स्वामी है और स्वामी से विश्वासघात करना अधर्म एवं जघन्य पाप है । आर्य समाजी सोमेश्वर दत्त ने उस नारी क्रय - विक्रय की सामंतवादी गुलामी प्रथा तथा इस जाति पर कहा था - "एक तरफ तो ये लड़कियों को बेचते है, और दूसरी तरफ ये लोग धर्म पर इतने दृढ हैं कि लड़की धर्म नही बदलेगी ।"[49]

तत्कालीन समाज-जीवन से सम्बन्धित अनेक सामाजिक तथा राजनीतिक चित्रों के भंडार से इस उपन्यास में युगीन साम्प्रदायिकता - बरेली में स्वामी जटिलानंद, अल्लामा वहशी तथा फादर मसीह के शास्त्रार्थ द्वारा रोचकता से प्रस्तुत की गई है । आर्य - समाज तथा मुस्लिम-लीग की साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों का भी विस्तृत वर्णन मिलता है और पता चलता है कि हिन्दू-समाज किस प्रकार धीरे - धीरे जड़ता की नींद से जाग रहा था । पण्डित सोमेश्वर दत्त का कथन इस चेतना का निदर्शक है - "हम हिन्दुओं की पोपलीला ने हमारे धर्म को खोखला कर दिया था, और हमारे धर्म की इस कमजोरी का फायदा मुसलमानों और किरिस्तानों ने उठाया; लाखों और करोडों की संख्या में हिन्दू विधर्मी बन गए । आर्य समाज हिन्दू - धर्म को सुगठित और संगठित कर रहा है । ऋषियों की परम्परा को पुनः जीवित कर रहा है ।"[50]

डा. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल के मतानुसार, "भूले बिसरे चित्र, में देश के साम्प्रदायिक झंगडों और स्वदेशी आन्दोलनों की नस लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता से पहचानी है । हिन्दू - मुस्लिम

साम्प्रदायिक झगड़े किस प्रकार व्यक्तिगत स्तर पर उतर आये, अंग्रेजों ने किस प्रकार उसे प्रोत्साहन दिया, इसकी यथार्थ झाँकी मिलती है ।"[51] संक्षेप में 'भूले बिसरे चित्र' में धार्मिक - वातावरण का सजीव चित्र लेखक ने चित्रांकित कर दिया है । इसमें लेखक ने हिन्दू - मुस्लिम साम्प्रदायिक कट्टरता पर अधिक बल देते हुए इस धार्मिक समस्या का उद्घाटन रोचकता से किया है ।

(ड) <u>सांस्कृतिक वातावरण</u> :

उपन्यास में सांस्कृतिक वातावरण का चित्रण अधिक मात्रा में नहीं हुआ है । फिर भी ग्रामीण - संस्कृति एवं नागरिक - संस्कृति की हलकी झलक मिलती है । गाँवों में होली के अवसर पर लोगों का विभिन्न प्रकार के सॉंग लेकर नाचना, भद्दे गीत गाना, एक-दूसरे को गालियाँ बकना, रंग छिड़कना आदि ग्रामीण संस्कृति की गतिविधि को उजागर करते हैं । इसके लिए आयु की कोई सीमा नहीं रहती थी । शराब के दौर चलते थे । भीखू जैसा बूढ़ा सेवक भी अपनी बिरादरी वालों के साथ हर साल होली मनाता था । होली के ये चित्र आज भी हमें देखने को मिलते हैं । कहीं लोग साल में एक बार ही सही, इसी दिन शराब पीते हैं, शोर मचाते हैं, गालियाँ देते हैं और एक - दूसरे पर रंग छिड़कते हैं ।

वर्माजी ने सांस्कृतिक - वातावरण की सृष्टि प्रसंगानुकूलता को ध्यान में रखते हुए की है । जैसे - ज्वालाप्रसाद और जैदेई के प्रेम-प्रसंग को मार्मिक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए होली का वातावरण तैयार किया है । होली के दिन अपने घर आये ज्वालाप्रसाद से जैदेई कहती है, "देवरजी, ऐन होली के दिन होरी दहकाने आए हो तो तुम्हें अपनी भौजी के साथ होली भी खेलनी पड़ेगी । अपनी भौजी से होली खेलाई भी लेनी पड़ेगी ।"[52]

होली के अवसर पर ग्रामीण संस्कृति का स्वाभाविक वातावरण अवलोकनीय है --

"गाँवों की पगडण्डियाँ होली मनाने वालों की भीड़ से भरी थीं, और यह भीड़ फाग गा रही थी, गालियाँ बक रही थी । गन्दे-गन्दे स्वाँग निकल रहे थे, चारों ओर एक भयानक नैतिक अराजकता दिख रही थी उन्हें, मानो दुनिया का असंयम बाँध तोड़कर उमड़ पड़ा हो ।"[53]

तत्कालीन - समाज में अपने बेटा - बेटियों के शादी-ब्याह तथा मुँडन जैसे अवसरों पर हजारों रुपये खर्च किये जाते थे । इसके उदाहरण गजराजसिंह की बेटी के विवाह प्रसंग तथा बरजोरसिंह के बेटे के मुँडन संस्कार के अवसर पर मिलते हैं, जिसका विवेचन हमने सामाजिक - वातावरण के संदर्भ में पहले ही कर दिया है । इन शादी-ब्याज तथा मुँडन जैसे सांस्कृतिक

अवसरों पर उस युग में महफिलों का आयोजन होता था, शराब के दौर चलते थे, वेश्याओं का नाच-गाना होता था - एक बार ज्वालाप्रसाद ने भी अपने घर को तबाह करके अपनी पौत्री विद्या का विवाह पन्द्रह हजार रूपये दहेज में देकर किया था । उसी प्रकार लक्ष्मीचन्द्र को 'सर' की उपाधि मिलने, राधाकिशन को "राजाबहादुर' का खिताब मिलने पर जुलूस निकालना, पार्टियों का आयोजन करना, महफिलें लगना, शराब के दौर चलना आदि तथा दिल्ली दरबार का आयोजन भी स्वांस्कृतिक वातावरण के अन्तर्गत आते हैं जिनके पीछे हजारों रूपये खर्च किए गए थे ।

उपन्यास में माघ महिने में ग्रामों में आयोजित मेलों का भी संकेत मिलता है । उसी प्रकार पुलिसों द्वारा आयोजित कुश्ती के दंगल का वातावरण सजीवता तथा रोचकता से प्रस्तुत हुआ है । इस प्रकार के दंगल के अवसर पर लोग दूर-दूर से टिकट लेकर दंगल देखने आते थे । इन अवसरों पर लोगों में अदम्य उत्साह रहता था और दंगल के आस-पास मेला-सा लग जाता था । इस वातावरण के संदर्भ में कुश्ती का एक सजीव दृश्य अवलोकनीय है, "अब बिशनलाल और मैकूसिंह का वास्तविक जोड़ शुरू हुआ । हालत यह कि बिशनलाल और मैकूसिंह अखाड़े का चक्कर लगा रहे हैं, आगे - आगे बिशनलाल और पीछे-पीछे मैकूसिंह, लेकिन एक-दूसरे की पकड़ में कोई भी नहीं आ रहा था । लोग हँस रहे थे, आवाजकशी कर रहे थे, शोर मचा रहे थे । प्रायः पाँच मिनट तक यही क्रम चलता रहा । आखिर भीड़ के तानों से झल्लाकर मैकूसिंह ने बिशनलाल के पकड़ ही लिया । दोनों गुँथ गए और आपस में, गुंथे हुए अखाड़े में चकर - घिन्नी लगाने लगे । बुध्दुसिंह को भी दोनों के दाँवों को देखते हुए दोनों के साथ-साथ दौड़ता पड़ रहा था ।"[54]

इस प्रकार 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में सांस्कृतिक वातावरण की सृष्टि हुई है । उपन्यास में स्वास्कृतिक वातावरण के अभिव्यक्ति के लिए अधिक अवसर था, परन्तु वर्माजी ने इसके सम्पूर्ण आयामों का उपयोग नहीं कर लिया है ।

(इ) **स्थानगत - चित्रण** :

'भूले बिसरे चित्र' में नदी, पर्वत, पहाड आदि के स्थानगत चित्रों की सुस्पष्ट झाँकी तो नहीं मिलती किन्तु गाँवों और नगरों की स्पष्ट झलक देने में वर्माजी सफल हुए हैं । वर्माजी के औपन्यासिक शिल्प - विकास के साथ-साथ उनके स्थानगत चित्रणों में स्वाभाविकता और सजीवता पाई जाती है । प्रस्तुत उपन्यास में गाँवों और नगरों का प्रसंगानुरूप चित्रण हुआ है । इसका प्रस्तुतीकरण इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि स्थानों का वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी स्पष्ट है । एक

स्थान पर आधुनिक ढग से सुसज्जित रायबहादुर कामतानाथ की कोठी का वर्णन द्रष्टव्य है ।

"रायबहादुर कामतानाथ की कोठी मुट्ठीगंज में थी । बाहर से रायबहादुर कामतानाथ की कोठी बड़ी साधारण-सी लगती थी - एक लम्बी - सी दीवार और उस दीवार से मिली हुई अनगिनत झोंपड़ीनुमा दुकानें । उस दीवार के बीचों - बीच एक बड़ा फाटक था और उस फाटक में घुसकर एक बगीचा । भीतर रायबहादुर की कोठी थी दुमंजिली, जिसका अगला हिस्सा पत्थरों से बना था । इस मुख्य कोठी में भी एक फाटक था, और फाटक के दाएँ - बाएँ बड़े-बड़े दालान थे । फाटक के अन्दर फिर एक बगीचा था और बगीचा समाप्त होते ही जनानी ज्योदी शुरू होती थी । बाहर वाले हिस्से को मरदानी ज्योदी कहा जाता था ।

लॉन पर एक बड़ा-सा तख्त पड़ा था और उस पर एक मोटा - सा गद्दा बिछा था । रायबहादुर कामतानाथ उस तख्त पर आधे बैठे और आधे लेटे हुक्का पी रहे थे । उस तख्त के बगल में पाँच - छः कुरसियाँ पड़ी थी । एक पर रायबहादुर कामतानाथ की पत्नी बैठी थीं, दूसरी पर उषा थी । उस तख्त से कुछ दूर हटकर दो कुरसियाँ और पड़ी थीं, जिन पर कामतानाथ की दोनों बहुएँ थीं ।"[55]

इस प्रकार उपन्यास में स्थानगत - चित्रणों से भी शिल्प सौष्ठव की वृध्दि हुई है ।

(ई) <u>प्राकृतिक - वातावरण</u> :

प्रकृति-चित्रण यदि सजीव और स्वाभाविक हो तो उसके द्वारा युगबोध की भी सफल अभिव्यंजित होती है । इस दृष्टि से 'भूले बिसरे चित्र' खरा उतरता है । उपन्यास में प्रकृति के स्वतन्त्र या आलम्बन रूप में चित्रण का अवकाश होता है किन्तु उसकी संगति और सार्थकता तभी विशेष निखरती है जब वह पात्रों की मनोदयशाओं की पृष्ठभूमि, उनके उद्दीपनया विषमता के साथ चित्रित किया गया हो । आलोच्य उपन्यास में ऐसे अवसर अत्यल्प ही हैं, जहाँ प्रकृति का अलम्बन रूप में चित्रण किया गया है; जैसे - "गरमी समाप्त हो गई थी और बरसाती घटा पूरब से उमड़ रही थी । किसान हल-बैल लेकर अपने घरों से निकलने की राह देख रहे थे । पिछली रात से ही ठंडी - ठंडी पुरवैया चलनी आरम्भ हो गई थी, और चारों ओर एक हर्ष और उल्लास का आयु-मण्डल व्याप्त हो गया था ।"[56] इस प्राकृतिक - वातावरण का अलम्बन रूप दोहरा है क्यों कि प्रकृति मनुष्य के सुख में उल्लसिता और दुःख में व्यथित प्रतीत होती है किन्तु प्रकृति की सुषमा न दुःखी होती है और न प्रसन्न । ज्वालाप्रसाद को प्रकृति का ऊपरी रूप सुहावना लगता है

तो गजराजसिंह को गंभीर क्यों कि गजराजसिंह बरजोरसिंह और प्रभुदयाल के संघर्ष की भावी सम्भावना से चिंतित है । इसलिए वे कहते हैं - "घटा उमड़ी है तो बरसेगी जरूर, लेकिन इस बरसात की शक्ल क्या होगी, मेरे लिए यह बता सकना कठिन है ज्वाला बाबू ।"[57] अन्य अधिकांश स्थलों पर प्राकृतिक - वातावरण मानवीय मनोदशाओं से संगति - विसंगति रखता है ।

ज्वालाप्रसाद गजराजसिंह को यह संदेश देकर आते हैं कि, प्रभुदयाल बरजोंह की जमीन पर कब्जा करने वाला है - तो इस संघष की परिणति क्या होगी इस सोच - विचार से उनका मन उद्विग्न और व्याकुल होता है । इस प्रसंग पर प्रकृति का आलम्बन रूप अवलोकनीय है --

"ज्वालाप्रसाद घर लौट आए । बादल अब जोर से कड़कने लगे थे और बूँदा - बाँदी शुरू हो गई थी । तहसील के घण्टे ने टनटन करके नौ बजाए । उत्तरी हवा समस्त वेग बटोरकर चल रही थी और घाटमपुर का कस्बा कुछ अजीब ढंग से वीरान लग रहा था । ज्वालाप्रसाद घर आकर लेट गए । बड़ी थकावट भर गई थी उनके शरीर में, उनके मन में, उनके प्राण में ।"[58] उसी प्रकार मुंशी शिवलाल की मडैया में मुंशी रघेलाल के परिवार के एकत्रित होने और फलस्वरूप परिवारिक शोर-गुल, लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट आदि झंझटों से परान पाने के लिए मुंशी शिवलाल लक्ष्यहीन - से माघ मेले में घूमने निकलते हैं । उस समय उसका मन बहुत भारी हो गया था, उनके प्राणों पर जैसे प्रहार पर प्रहार पड़ रहे थे । सारी दुनिया उन्हें बदली हुई दिखाई दे रही थी उनके इस अन्तर्द्वन्द्व को प्रकृति पर आरोपित कर और भी प्रभावशाली बनाया गया है । जैसे - "शाम हो रही थी । अब हवा जोरों के साथ चलने लगी थी । उत्तर में छोटे-छोटे बादलों के टुकड़े आसमान पर तैरते हुए आ रहे थे, और सारा वातावरण विक्षुब्धसा हो गया था । मुंशी शिवलाल काफी देर तक इस प्रकार निष्प्रयोजन, निरूद्देश्य घुमते रहे ।"[59]

उपन्यास के कतिपय प्रसंगों में प्रकृति का प्रतीक के रूप में भी चित्रांकन किया गया है । उदाहरण के लिए निम्नांकित अवतरण द्रष्टव्य है, जिसमें मानव - जीवन यात्रा का प्रकृति के माध्यम से चित्रण किया गया है --

"सामने मार्च के महीने की हल्के ताप से भरी सुनहली धूप थी और हरी दूब वाले मखमली लॉन के किनारे पर रंग-बिरंगे फूल खिल रहे थे । नवल की नजर उन फूलों से उलझ गई और वह सोचने लगा । एकबारगी ही तरह-तरह के रंगों के हजारों - लाखों फूल खिल उठे थे । लेकिन यह सब फूल आए कहाँ से । रंगों का यह वैविध्य, इसका स्त्रोत कहाँ है - उन छोटे-छोटे बीजों में है, उस मिट्टी में है, उस पानी में है जिससे ये पौधे सींचे गए थे, या इस ऋतु में है जिसमें ये

फूल खिलते हैं ?

ये फूल खिलते हैं, ये फूल मुरझा जाते हैं । यह खिलना और यह मुरझाना यह सब क्यों ?

और यह शंका, यह प्रश्न, यह सब फूलों के सम्बन्ध में ही क्यों ? यह प्रश्न समस्त सृष्टि पर लागू होता है । मनुष्य पैदा होता है, मनुष्य मरता है । बनना और मिटना, यही प्रकृति का नियम है ।"[60]

यहाँ प्रकृति-चित्रण स्पष्ट रूप से मानव-जीवन की अनिश्चितता के रूप में किया गया है । उसके भी आगे जाकर वर्माजी मानव - जीवन की जन्म - मृत्यु की अनिश्चित शृंखला को प्रकृति के द्वारा प्रतीकात्मक रूप में चित्रित करते है -- नवल सोच रहा था - "इन फूलों का तो इतिहास नहीं लिखा जाता । हर साल वसन्त ऋतु में अनगिनत फूल खिल उठते हैं और ग्रीष्म आते ही वे सब - के सब मुरझा जाते हैं । लेकिन यह अकारण असीम सौंदर्य का सृजन, और यह आकरण उस सौन्दर्य का विनाश, यह नवल की समझ में नहीं, आ रहा था ।"[61] लेखक ने यहाँ प्रकृति का मानवीकरण भी किया है ।

उपन्यास में प्रकृति का स्वतंत्र रूप में भी चित्रण हुआ है; जैसे - "पानी तीन दिन लगातार बरसता रहा था, झड़ी-बौछार । उस दिन बादल फटने लगे थे । शाम के समय नवल जब चाय पीकर बरामदे में आया, आसमान साफ हो गया था और डूबते हुए सूर्य की लाल और मुरझाई हुई धूप बरामदे में पड़ रही थी । जुलाई का अन्तिम सप्ताह था । चारों ओर हरियाली फैली हुई थी ।"[62]

इस प्रकार प्राकृतिक - वातावरण से 'भूले बिसरे चित्र' में कलात्मक अभिवृध्दि हुई है । किन्तु इसमें प्रकृति के मानवीकरण की दृष्टि से उतना अधिक सूक्ष्म - चित्रण नहीं हुआ है । लेखक ने प्रकृति के सूक्ष्म बिम्बों के स्थान पर मात्र उसके ऊपरि चित्रण पर ही अधिक जोर दिया है । यद्यपि उपन्यास में पात्रों के कार्य - कलापों तथा उनके अन्तर्बाह्य संवेदनाओं को स्पष्ट अभिव्यक्ति देने के लिए प्राकृतिक वातावरण का आलम्बन, उददीपन तथा मानवीकरण इसके साथ - साथ स्वतंत्ररूप में भी चित्रित करने का अधिक अवकाश था, किन्तु लेखक ने प्राकृतिक वातावरण का उतना अधिक कलात्मक उपयोग नहीं कर लिया है । लेखक ने पात्रों के अंन्तर्बाह्य मनोदशा का अपनी ओर से ही परिचय देकर व्याख्या - विश्लेषण द्वारा ही अधिक काम चला लिया है ।

संक्षेप में 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में राजनीतिक, सामजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रकृतिक अदिक् वातावरण का स्वाभाविक तथा सजीव चित्रण हुआ है । अतः देशकाल की दृष्टि से भी प्रस्तुत उपन्यास खरा उतरता है । उपन्यास में चित्रित युग-जीवन तथा देश-काल-वातावरण के संदर्भ में आलोचकों ने विभिन्न प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं । डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त के मतानुसार, "इसके (भूले बिसरे चित्र) कथा-पट पर अनेक राजनीतिक, सामजिक और पारिवारिक चित्र उभरते हैं और गाँव तथा शहरों से गुजरते हुए बदलते हुए जीवन-मूल्यों, आदर्शों और पीढ़ियों के बीच हुए अन्तर को स्पष्ट करते हुए लुप्त हो जाते हैं । इस प्रकार यह उपन्यास बहुवर्णी जीवन का मार्मिक चित्र अंकित करता है - उत्तर प्रदेश के ब्याज से समस्त उत्तर भारत का और राजनीतिक चेतना के परिप्रेक्ष में समस्त भारत का चित्र अंकित करता है ।"[63] वहीं डा. शंकर वसंत मुदगल 'भूले बिसरे चित्र' को भारत के पचास साल के युग का सच्चा दर्पण कहते हुए लिखते हैं - "पचास साल की जिन्दगी को वर्मा ने विस्तृत एवं सूक्ष्मता से चित्रित किया है । भारत की अर्धशती की सामाजिक उथल - पुथल, राजनीतिक दाँव पेंच एवं संघर्ष, आर्थिक उतार - चढ़ाव, नैतिक - पतन एवं सांस्कृतिक विविधता इतनी विराट मात्रा में प्रकट हुई है कि जो कुछ है वह महाकाव्य की अनुभूति देने में सक्षम है । अतः यह बात सिध्द होती है कि भगवतीचरण वर्मा कृत "भूले बिसरे चित्र" युग का सच्चा दर्पण है ।"[64] डा. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल इस संदर्भ में लिखते है कि, "उपन्यास में बीती हुई अर्धशती के भूले बिसरे चित्रों को वर्माजी ने पुनः याद के सहारे चित्रित किया है; जिसमें साम्यवादी चेतना के विकास और राष्ट्रीय आन्दोलनों मे उनके योगदान का वर्णन है और साथ ही यह भी दिखाया गया है कि किस प्रकार सरकारी अफसरों के परिवारों में राष्ट्रीय चेतना प्रभाव डाल रही थी ।"[65]

ऊपरी तीनों विद्वानों के मत उचित प्रतीत होने हैं क्यों कि 'भूले बिसरे चित्र' में पुराने सामजिक - मूल्यों के टूटने तथा नये मूल्यों के पनपने, उसके आर्थिक शोषण, राष्ट्रीय जागरण तथा स्वतंत्रता - संग्राम, सांस्कृतिक दृश्य, धार्मिक साम्प्रदायिकता और इसके साथ - साथ प्रकृति - चित्रण आदि के सन्निवेश से उपन्यास में अतीत के भूले बिसरे चित्र फिर एक बार सम्पूर्ण आयामों के साथ जीवंत हो उठे हैं ।

डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त प्रस्तुत उपन्यास की तुलना प्राउस्त के उपन्यास से करते हुए लिखते हैं - "इसके विशल चित्र - फलक को देख सहसा फ्रेंच उपन्यासकार मार्शल प्राउस्त के उपन्यास (Rememberance of things Past) की याद आ जाती है । परन्तु जहाँ प्राउस्त का

दृश्यांकन स्मृति के त्रि-पार्श्व फलक से छन कर आता है, वहाँ इस उपन्यास में इतिहास की वस्तुपरक दृष्टि मात्र है ।"[66] डा. गुप्त का यह मत युक्तियुक्त है क्यों कि उपन्यास में लेखक की दृष्टि ऐतिहासिक या सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित सूक्ष्म तथ्यों पर उतनी अधिक केन्द्रित नहीं है, जितनी कि पारिवारिक वातावरण एवं परिवर्तनशील युग पर है । लेखक ने ऐतिहासिक घटनाओं का प्रयोग केवल साधन के रूप में ही कर लिया है । अनेक स्थानों पर लेखक ने ऐतिहासिक या राजनीतिक घटनाओं का मात्र संकेत ही दे दिया है । अगर उपन्यास में ऐतिहासिक तथ्यों का सूक्ष्मता से विवेचन किया गया होता तो उपन्यास का स्वरूप ही बदल जाता और शायद वह ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटी में रखा जाता ।

डा. अमरसिंह लोधा की यह शिकायत है कि, "वर्माजी ने नवीन युग की परिवर्तनशीलता का निर्देश अवश्य किया है, पर प्रगतिशील तत्वों एवं सजग सामाजिक चेतना का इसमें निरूपण नहीं है ।"[67] डा. अमरसिंह लोधा का यह मत कुछ हद तक उचित माना जा सकता है । इसमें समाज के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश नहीं ड़ाला गया है । लेखक की दृष्टि सामाजिक - वातावरण की अपेक्षा एक परिवर्तनशील युग पर ही अधिक केन्द्रित रही है । अतः इसमें प्रेमचंद के 'गोदान' की भाँति ग्रामीण या नागरिक समाज के सजग एवं समग्र चित्र नहीं उभरते । इस प्रकार उपन्यास में तेजी से बदलते युग का ही चित्र प्रस्तुत हुआ है । उपन्यास के अन्त में पचास वर्ष के जनजीवन को अत्यंत बदले हुए रूप में देखकर वृध्द ज्वालाप्रसाद ने वृध्द सेवक भीखू के आगे आश्चर्य प्रकट किया था । लेखक उनके मनोभावनाओं को स्वयं उद्घटित करते हुए तथा नई और पुरानी पीढ़ी के अन्तर को युगीन सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुए उपन्यास के अन्त में लिखता है : "दो बूढ़े, जिन्होंने युग देखा था, जिन्दगी के अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे जिन्होंने, जिनके पास अनुभवों का भण्डार था, विवश थे, निरूत्तर थे । और दूर हजारों, लाखों, करोड़ों आदमी जीवन और गति से प्रेरित, नवीन उमंग और उल्लास लिये हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे थे ।"[68]

इस तरह 'भूले बिसरे चित्र' में भारतीय - जीवन के लगभग अर्धशती की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक गतिविधी सजीवता से चित्रित की गई है । इसमें हम राजनीतिक आन्दोलनों और धार्मिक एवं पारिवारिक संघर्षों के बीच करवट बदलते हुए समाज का दर्शन करते हैं । इस समाज में राजनीतिक चेतना के साथ-साथ पुरानी मान्यताएँ टूट रही थीं, और उनके स्थान पर नई मान्यताओं का समाज में धीरे-धीरे स्वागत हो रहा था । निःसन्देह सामाजिक चेतना का यह

रूप राजनीतिक चेतना से प्रेरित था, साथ ही सामन्ती समाज - व्यवस्था एवं अंग्रेजों द्वारा देश के अभूतपूर्व आर्थिक शोषण के कारण भी विभिन्न आन्दोलनों में सामूहिक चेतना के दर्शन होते हैं । अतः उपन्यास में युगीन देशकाल - वातावरण सजीव बन पड़ा है ।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि देशकाल - वातावरण की दृष्टि से 'भूले बिसरे चित्र' में भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन की गतिविधि मूर्तिमान हो उठी है । इसमें ग्राम्य - जीवन तथा नगर - जीवनसे सम्बन्धित ईर्ष्या - द्वेष, लड़ाई - झगड़ा, बात-चीत, खान-पान, वेश-भूषा, पारिवारिक-विघटन, धार्मिक-आड़म्बर आदि तथ्यों को लेखक ने सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है । इसके साथ - साथ सामन्तीय - जीवन के टूटने, बनियों के अभ्युदय तत्पश्चात पूँजीवाद के उदय एवं चरमोत्कर्ष का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है । अंग्रेजी शासन का आधिपत्य, अदालती-कारोबार, दिल्ली दरबार, गांधीजी का भारत आगमन और स्वतंत्रता आन्दोलन में सरगर्मी, कांग्रेस के विभिन्न आन्दोलन, मुस्लिम लीग की स्थापना, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगे, जालियाँ वाला बाग हत्याकाण्ड, असहयोग आन्दोलन, चौरी-चौरा की हिंसक घटना, सामूहिक सत्याग्रह आन्दोलन तथा नमक-कानून भंग आदिक घटनाओं के उल्लेख से तत्कालीन राजनीतिक - चेतना का पूरी सम्भावनाओं के साथ निर्वाह हुआ है । मध्यवर्गीय नौकरीपेशा करने वाले लोगों की फिजूल खर्ची, वेश्यागमन, मद्यपानआदि से ह्रासोन्मुख स्थिति, उच्च-वर्ग में नारी द्वारा आर्थिक लाभ प्राप्त की भावना तथा उनके स्त्री पुरूषों का नैतिक पतन, आधुनिक नवयुवकों का राष्ट्राभिमान, शिक्षित नारियों की स्वच्छन्दता तथा नारी जाग्रति की भावना आदि तथ्यों को भी उद्भासित करने में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है । वस्तुतः 'भूले बिसरे चित्र' में देश-कालानुरूप वातावरण - योजना उपन्यास की मूल आत्मा से इतनी एकरूप हो गई है कि उपन्यास को पढ़ते हुए हम उसकी स्वाभाविकता, सजीवता, यथार्थतादि अनुभव करके, लेखक की गहन अन्तर्दृष्टि के प्रति विस्मय - विमुग्ध हो उठते हैं । किन्तु इसके बावजूद भी कुछ स्थलों पर लेखक की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का अभाव महसूस होता है । अनेक घटनाओं - प्रसंगो के अवसर पर लेखक की वस्तुपरक दृष्टि-ही दिखाई देती है । किन्तु जहाँ एक अत्यंत परिवर्तनशील युग-जीवन के चित्र का प्रश्न है, वहाँ लेखक की गहन-अन्तर्दृष्टि एव कलात्मकता सराहनीय है । अतः इस रूप में उपन्यास में अतीत के भूले बिसरे चित्र लगभग साकार हो उठे हैं, जो वर्तमान और अतीत दोनों की अभिव्यक्ति करने में सक्षम हैं ।

x x x

संदर्भ संकेत - सूची

1. शुक्ल बैजनाथ प्रसाद डा., भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना, पृ. 428
2. - वही - पृ. 423
3. टंडन प्रतापनारायण डा., हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ. 37
4. वर्मा भगवतीचरण, साहित्य के सिध्दान्त तथा रूप, पृ. 9
5. जैन नेमिचन्द्र, अधूरे साक्षात्कार, पृ. 83
6. शुक्ल बैजनाथ प्रसाद डा., भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना, पृ. 429
7. लोधा अमरसिंह ज.डा., प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना पृ. 277
8. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 276
9. - वही - पृ. 395
10. - वही - पृ. 398
11. - वही - पृ. 398
12. - वही - पृ. 482
13. - वही - पृ. 483
14. - वही - पृ. 697
15. - वही - पृ. 411-12
16. - वही - पृ. 467
17. - वही - पृ. 547
18. - वही - पृ. 710
19. गुप्त शांतिस्वरूप डा., हिन्दी उपन्यास - महाकाव्य के स्वर, पृ. 58
20. अंसल कुसुम डा., आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में महानगर, पृ. 93
21. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 419
22. - वही - पृ. 131
23. - वही - पृ. 111
24. - वही - पृ. 36
25. - वही - पृ. 64

26. - वही - पृ. 32
27. - वही - पृ. 495
28. - वही - पृ. 307
29. - वही - पृ. 161
30. - वही - पृ. 172
31. - वही - पृ. 16
32. - वही - पृ. 118
33. - वही - पृ. 480
34. - वही - पृ. 117
35. - वही - पृ. 121
36. - वही - पृ. 45
37. - वही - पृ. 252
38. - वही - पृ. 286
39. - वही - पृ. 640
40. - वही - पृ. 45
41. - वही - पृ. 46
42. - वही - 42
43. - वही - पृ. 96
44. - वही - पृ. 137
45. - वही - पृ. 687
46. - वही - पृ. 599-600
47. गुप्त शांतिस्वरूप डा., हिन्दी उपन्यास : महाकाव्य के स्वर, पृ. 62
48. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 200
49. - वही - पृ. 332
50. - वही - पृ. 238
51. शुक्ल बैजनाथ प्रसाद डा., भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों मे सामाजिक चेतना, पृ. 424
52. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 99
53. - वही - पृ. 101

54. - वही - पृ. 165

55. - वही - पृ. 565

56. - वही - पृ. 41

57. - वही - पृ. 41

58. - वही - पृ. 64

59. - वही - पृ. 125

60. - वही - पृ. 559

61. - वही - पृ. 560

62. - वही - पृ. 600

63. गुप्त शांतिस्वरूप डा., हिन्दी उपन्यास : महाकाव्य के स्वर, पृ. 58

64. मुदगल शंकर वसंत डा., हिन्दी के महाकाव्यंत्मक उपन्यास, पृ. 415

65. शुक्ल बैजनाथ प्रसाद डा., भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना, पृ. 162

66. गुप्त शांतिस्वरूप डा., हिन्दी उपन्यास - महाकाव्य के स्वर, पृ. 59

67. लोधा अमरसिंह ज.डा., प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना, पृ. 276

68. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 712

× × ×